# बेगाने घर में



# बेगाने घर में

मनमोहन भाई साहब और सुमोहिनी भाभी के लिए

# क्रम

पीली कोठी का पिछवाड़ा / ९
नीम तले / १८
बड़ी बी / २७
जनाना वार्ड / ३२
नौचंदी / ४५
टाल की आग / ५६
चबूतरे पर शाम / ६१
बेगाने घर में / ७०

# पीली कोठी का पिछवाड़ा

बन्नो इमली के पेड़ों के नीचे कटारे बीनती फिर रही थी। बीच-बीच में सतर्क निगाहों से गेट की तरफ देख लेती, कहीं मालिक की टमटम उसके अब्बा समेत बेवक्त ही न नमूदार हो पड़े। चकमक दोपहरी में कोठी के अदर तक जाने वाली लम्बी, गलियारानुमा सड़क के दोनों किनारे फूलों से लदे-फदे थे। दूसरी तरफ मालिक की खास बगीची पडती थी, बेल, अमरूद, नीबू, आम और जामुन के पेड़ों से भरी-पूरी। बगीची के मुहाने पर पीले गुलाब की लतर में मेहराब बनी थी। और, उसमें सटा चौडा, उजला चबूतरा था। पक्के चबूतरे के एक कोने में मिट्टी का चौका खुदा था, जहा

नागचंपा का खूब बड़ा पेड़ खड़ा था। उसकी लचकदार टहनियों ने अपने घुमावों में कुदरती झूले-से डाल लिए थे। इसी पेड़ के नीचे छूनी बैठी गिट्टे खेल रही थी।

वन्नो की छूनी से कुट्टी चल रही है। उसका जी हो रहा था कि एक दौड़ में जाकर नागचंपा की गोद में जा बैठे, और अपनी टांगें झुला-झुलाकर छूनी का खेल बिगाड़ दे। "बड़ी आयी घसियारे की बेटी कहीं की, कहियो कभी मेरे अब्बा से कि चचा जान हमें भी टमटम की सैर करा दो ज़रा। घोड़ी से ही दुलत्ती ना झड़वा दी तो मैं भी कोचवान की बेटी नहीं!" वन्नो बुड़बुड़ाती हुई बांस से कटारे गिराने लगी।

इतने में कोठी के बायें पिछवाड़े से छूनी की छोटी बहन छुटकी दौड़ी चली आयी। "छूनी! ओ छूनी री! कहां मर गयी? चल, अम्मा बुला रई है, रोटी खा चलके।"

मां का संदेश देती छुटकी को वन्नो ने पुकार लिया:

"ओ छुटकी, ले देख कैसे तीखे-तुर्श कटारे बीने हैं मैंने। आधे तू ले ले।"

छुटकी तो ऐसे दौड़ी आई जैसे पुचकार सुनकर कोई पिल्ला दौड़ पड़े।

वन्नो ने छूनी को सुनाकर ऊंची आवाज़ में कहा:

"और देख, उस छूनी की बच्ची, चटोरी, टुच्ची को एक भी चखने को ना दीजो, समझी?"

छुटकी कटारे समेट कोठी के पिछवाड़े की तरफ पलट ली, सोचा मरने दो छूनी को, सामने पड़ते ही सारे कटारे लूट लेगी।

"छुटकी किधर चल दी? चल आ चूड़ियां खेलें। देख कित्ती सारी इकट्ठी कर लीं मैंने। ये लहरवां, ये मीने वाली, ये बुंदकियों वाली। जीत ले जाएं जिस कोई में भी हुनर हो।" वन्नो ने फिर ऊंची आवाज़ में कहा। छूनी से अब और न रहा गया। वह मुंह फुलाए

इमली के पेड़ों के नीचे आ गई।

"अरी! किसकी चूड़ियां फूट गईं जो बटोर लाई?" उसने बन्नो को समझौते का न्योता दिया।

"कमबख्त! राह से चुनकर बटोरी हैं। और तुझे उस रोज़ इतनी लाला ने समझाया नहीं था कि चूड़ी फूट गई, टूट गई कहने से बदसगुनी होती है? चूड़ी मौल गई, बिसम गई कहाकर।" बन्नो ने ज़रा बुज़ुर्गाना अंदाज़ में कहा, और रंगीन कांच की चूड़ियों का टूटा अंबार मिट्टी पर पसार दिया।

छुन्नी की आंखों में लोभ चमकने लगा।

"जा री छुटकी, मेरी मौली चूड़ियों की पोटली यहीं उठा ला और मेरी रोटी भी।" उसने छुटकी को दौड़ा दिया।

दोपहर-भर टूटी चूड़ियों की चौपड़ होती रही। दोनों को ज़्यादा से ज़्यादा टूट जीत लेने का इंतज़ार था, क्योंकि तब ही तो दिये की लौ पर चूड़ियों के टुकड़े रखकर नरम करके मोड़े जाएंगे और एक में एक पिरोकर, रंग-बिरंगे हार बनाया जाएगा। जीत की निशानी वाला हार!

छुन्नी की बड़ी बहन बड़की ने तो आकर हद ही कर दी। एकदम से छुन्नी का कान उमेठकर खड़ा कर दिया।

"मालिक के आने का टैम हो गया और ये दोनों अब तलक यहां पसरी हैं। मालिक ने कोठी तेरे नाम लिख दी है क्या, जो सारी ज़मीन घेरकर बैठी है? चल अपने पिछवाड़े में चल के मर। बापू ने कित्ती बार कह दिया है कि इस टैम नौकर-चाकर का कोई बाल-बच्चा कोठी के आगे चक्कर मारता न मिले!"

इतने में मालिक का बावर्ची और खास खादिम गनपत भी पहुंच गया और मुस्तैदी से बच्चों को भगाने लगा।

"चलो, चलो, भगो पिछवाड़े में। ये रतनी की रेजगारी, जब देखो तब यां-वां बिखरी पड़ी रहेगी। क्यों री बड़की, संभाल के नईं रख सकती तेरी अम्मा अपनी खरीज को? आने दे जगेसर को। आज सबको पिटवाऊंगा। भगवान ऐसी सुस्त औरत किसीको भी न दे। दिन-भर पड़ी ऊंघेगी और लौंडी-लारे मुर्गियों की तरह इधर-उधर कुड़कुड़ाते फिरेंगे। इससे तो मैं कुंवारा भला। चल री बन्नो, तू भी घुस अपने दड़बे में, नहीं तो आज इमली के पत्तों पर दंड पिलवाऊंगा। समझी?"

गनपत ने बच्चों को पिछवाड़े की तरफ हांक दिया और बढ़कर गेट खोल आया। गेट के बाहर फकीरा भिश्ती मशक के पानी से छिड़काव कर रहा था।

"क्यों रे फकीरा, कोठी के भीतर छिड़काव ले आएगा तो घाटे में पड़ जाएगा क्या? ऐसे बचा-बचाकर छिड़क रहा है जैसे पानी दाम देकर मोल लाया हो।"

गनपत ने फकीरा से टोका-टाकी की तो वह बस, मुस्कराकर मशक अंदर ले आया और फूलों की लंबी कतार वाली सड़क पर छिड़काव करने लगा। चबूतरा तो पहले से ही धुला था। छन्नो मालिक के आने से पहले ही धो गई थी। गनपत ने वहां आराम कुर्सियां और तिपाइयां खींच दीं। मालिक शाम का चाय-नाश्ता वहीं करते थे।

कोठी के पिछवाड़े नौकरों के लिए आठ कोठरियां बनी हुई थीं। साथ-साथ सटी हुईं। नहानी और पाखाना सार्वजनिक था। छोटे बच्चों के लिए औरतों ने दो-दो ईंट रखकर खुड्डियां बना ली थीं, जिनपर हर समय कोई न कोई बच्चा आसीन रहता। इस समय भी वहां रहमतुल्ला कोचवान का छोटा लौंडा, नन्हे, बैठा "अम्मी हो गई धोदे।" का नारा बुलंद कर रहा था। नूरी तसले में राख लिए आई और नन्हे को खुड्डी पर से हटा नल के नीचे कर, तसला-भर राख मैले पर उलट दी। तभी कोठी की मेहतरानी

छत्रो का आगमन हुआ। मालिक की उसे सख्त हिदायत थी कि नौकरों का पाखाना भी कतई साफ रखा जाए।

छत्रो ने चार खुड्डियां भरी देखी तो बरस पड़ी, "येल्लो! मुफ्त का खिला-खिलाकर इन पिल्लों को मुताओ और हगाओ दिन-भर। अपनी मेहनत-मजूरी की खाने को खुला छोड़ दें तो ससुरे, तीन दिना में एक बेर भी न फिरें।"

छत्रो की झुग्गी, कोठी की हद से बाहर, दायीं तरफ लकड़ी की टाल के करीब थी। मेहतर सरकारी दफ्तर में लगा था। बच्चे होना राम जी को मंजूर न हुआ था। बस, खाली ठुड्ड दो जन थे।

"बड़ी बी को आ जाने दे जरा। वही निपटेंगी तुझसे।" नूरी ने अपनी सास का डर दिखाते हुए कहा।

"अरे बड़ी बी क्या तोप हैं? कि दोनाली बदूक हैं? जो हम डरा करेंगे उनसे? और इन लाडलों को गुलकंद जरा कमती खिलाया करो।" छत्रो और बड़ी बी की पुरानी लड़ाई थी। पारसाल जब वह आई हुई थीं तो कुछ नोक-झोंक दोनों में हो गई थी जिसकी बदौलत दोनों ने एक-दूसरे को बहुत हसीन खिताब बख्श रखे थे।

'चबूतरे की मालकिन' का खिताब बड़ी बी ने छत्रो को उस रोज बख्शा था जिस दिन बन्नो और नन्हे कोठी के चबूतरे पर ढेरों मूंगफली के छिलके और चूसी हुई गंडेरियां बखेरने के उपलक्ष्य में छत्रो से झिड़की खाकर रोते हुए अहाते में पहुंचे थे।

बड़ी बी अपना बुर्का कन्धों पर डाल चबूतरे तक चली आई थीं।

"क्यों री निगोड़ी, बंजर, ठूंठ! तुझे दूसरों की औलाद इस कदर मनहूस लगे है? क्यों टर्रा रही थी इनपर?"

"कायदे से बात करो, बड़ी बी! उधर मालिक के पलटने का टैम हो

रहा हैगा और इधर तुम्हारे लाडलों ने पूरे चबूतरे पर मूंगफली और गंडेरियां बोकर रख दी हैंगी।"

"तो, मालिक के लौटने के वक्त से पहले ही तो तेरा 'टैम' बांध रखा है। कूड़ा ही ना हो, तो भंगी लगा रखने का फायदा?"

"अच्छा? मैं तुम्हारी लगाई भंगन हूं? वाह री मेरी बेगम-महल की बेगम! और कितने खिदमतगार लगा रखे हैं तुमने? दो टके की औकात! और देखो तो कैसा साही फरमान दे रही हैंगी!"

"चुप। बड़ी आई चबूतरे की मालकिन! अपनी खाल में रह, नहीं तो खिचवा के भूसा भरवा दूंगी।"

वो तो गनीमत हुई कि झाड़ू नचाती चबूतरे की मालकिन और पीक के साथ "मुई, मरदूद, मुर्दार!" उगलती बेगम-महल की बेगम की इस ताजपोशी के वक्त गनपत वहां पहुंच गया था और सुलह करवा दी थी।

बतौर यादगारे-जंग, बड़ी बी छत्रो को योंही याद फरमाया करतीं।

"वो नहीं आई आज चबूतरे की मालकिन साहिबा? खुड्डियां तो सड़ी पड़ी हैं।"

छत्रो भी बड़ी बी की इज़्ज़त-अफज़ाई में कहती:

"वो ना दीखीं आज, बेगम-महल की बेगम? दस्त लगे हैं क्या?"

नौकरों की कोठरियों के पीछे मालिक यानी श्री किशोरचन्द्र की छोटी-सी खेती थी। बनफुलवा वहां हरा धनिया, पोदीना, मूली, गाजर, टमाटर, आलू, प्याज़ बोकर रखता।

पैदावार का कोई भी हिस्सा बाज़ार में बिकने जाना वर्जित था। मालिक की रोज़ की सलाद-चटनी बन-पिसकर बाकी फसल मालिक के दोस्त डॉ० मनोहर सिंह के घर, छोटी कोठी के किरायेदारों और अहाते के नौकरों के यहां पहुंचा दी जाती।

पन्द्रह दिन मे एक बार मालिक के अन्य मेल-मुलाकातियों के यहा भी, जिनमे उनका मिलन क्लब तक ही सीमित हो गया था, एक डाली चली जाती।

बनफुलवा ज्यादातर अपनी खेती आगे वाली फुलवारी या फलों के बगीचे में ही कर पाता। वह कीडे की तरह फूल-पत्तियो से चिपका हुआ था।

बनफुलवा की घाघरा-चोली वाली ठेठ देहातन पत्नी चपी शाम ढले बापू की खोज मे कभी मनवा को दौडाती, कभी बिटौना को। वह अक्सर ही बनफुलवा के बिना लौटते, जिससे चपी रोने-रोने को हो आती। इस वक्त भी वह चीख-पुकार मचा रही थी :

"अरे आग लगे इस बागवानी पे। रोजे भोर का गवा रात मा लौटत है। रोटी-टुक्कड की भी सुध नांही। अपनी अऊलाद से भी पियारा भवा ई बगीचा। हुआ मचिया पे पडे अमरूदन पे ते तोता उडान रहे होइगे। ना टैम से खावत हुई, ना सोवत हुई। बस, झाड-झंकार निहारे ते ही मन न अघात उनका तो।"

कोठी के भीतर का झाडू-खटका चंपी ही कर आती है।

गनपत मालिक के हाथ से ब्रीफ केस और फाइल लेकर अंदर चला आया चाय-नाश्ते की तैयारी करने। जब से मालकिन गुज़री हैं गनपत ही मालिक की देख-रेख करता आया है, एक नेक बीवी की तरह। किताब की तरह मालिक का चेहरा पढ लेता है। मालिक भरी जवानी में ही मालकिन को खो बैठे थे। मालकिन ने पांच बार संतान को जन्म दिया था। पर सबके सब पालने में से ही उठ गए थे। बस सोते-सोते अचानक सांस लेना बद कर देते। सवेरे एक नन्ही-मुन्नी लाश ही मिलती।

नौकरों-चाकरों ने पालना बदलवाया। नये बच्चे को नौकरों के बच्चों

की पुरानी उतरन तक पहनाकर नजर वचाई। वोरी में लपेटकर पांच वार आंगन में घसीटा जिससे होनी की नजर लाड़ला समझकर वच्चे पर न पड़े। डाक्टर साहव ने विलायत तक से दवा मंगवायी पर तकदीर नहीं पलटी। मालकिन के दिल पर सनाका रह गया। पांचवें वच्चे की लाश गोद में लिए-लिए उन्होंने प्राण छोड़ दिए।

तभी से गनपत ने कुंवारे रहने की कसम खा ली। कहता :

"क्या करना है ससुर, घर वसाके। मेरठ शहर के ऐसे नामी-गिरामी वकील, किशोरचन्द्र, मेरे मालिक! और क्या मिला उन्हें घर वसाकर, पांच संतानों का दुःख!"

गनपत के व्याह के वहुतेरे खत आए गांव से। फिर उसे कहने-सुनने वाले ही परलोक सिधार गए और गनपत रह गया निपट अकेला, जिसके आगे न कोई टोक और पीछे न कोई परछाई।

मालिक भीतर चले गए तो रहमतुल्ला कोचवान ने रोज़ की तरह जगेसर घसियारे को हिदायत दी :

"घोड़ी खोल ले वे, और नीम तले वांध दे। टमटम मैं अंदर करूंगा। तुझसे खरोंच खा जाएगी।"

"आज घोड़ी की वो वढ़िया खरहरी करूंगा कि खाल चमक उट्ठेगी। तुम भी जरा अपनी टमटम चमका लेना, नहीं तो दलिद्दर लगेगी घोड़ी के आगे। पंद्रह रोज़ से गाड़ी के पालिस का हाथ तो मारा ना हैगा और कह रये हो कि मेरे से खरोंच खा जाएगी।" जगेसर ने जवाव दिया।

घोड़ी को जगेसर और रहमतुल्ला, दोनों सच्चे दिल से चाहते हैं। रहमतुल्ला ने उसका 'वीवी जान' नाम रखा था।

जगेसर ने घोड़ी गाड़ी से अलग की और उसका साज उतारने लगा। फिर उसका कंधा सहलाता उसे नीम तले वांध आया। दो-चार धौल-धप्प

पद्रह दिन में एक बार मालिक के अन्य मेल-मुलाकातियों के यहां भी, जिनमें उनका मिलन स्लव तक ही सीमित हो गया था, एक डाली चली जाती।

बनफुलवा ज्यादातर अपनी सेती आगे वाली फुलवारी या फलों के बगीचे में ही कर पाता। वह कीड़े की तरह फूल-पत्तियों से चिपका हुआ था।

बनफुलवा की घाघरा-चोली वाली ठेठ देहातन पत्नी चंपी ग्राम ढले बापू की खोज में कभी मनवा को दौड़ाती, कभी बिटौना को। वह अक्सर ही बनफुलवा के बिना लौटते, जिससे चंपी रोने-रोने को हो आती। इस वक्त भी वह चीख-पुकार मचा रही थी :

"अरे आग लगे इस बागवानी में। रोजे भोर का गया रात मां लौटत है। रोटी-टुक्कड़ की भी सुध नांही। अपनी अऊलाद से भी पियारा भवा ई बगीचा। हुआं मचिया पे पड़े अमरूदन पे तें तोता उड़ान रहे होइगे। ना टैम से खावत हई, ना सोवत हई। बस, झाड़-झंकार निहारे तें ही मन न अघान उनका तो।"

कोठी के भीतर का झाड़ू-खटका चंपी ही कर आती है।

गनपत मालिक के हाथ से ब्रीफ केस और फाइल लेकर अंदर चला आया चाय-नाश्ते की तैयारी करने। जब से मालकिन गुजरी हैं गनपत ही मालिक की देख-रेख करता आया है, एक नेक बीवी की तरह। किताब की तरह मालिक का चेहरा पढ़ लेता है। मालिक भरी जवानी में ही मालकिन को खो बैठे थे। मालकिन ने पांच बार संतान को जन्म दिया था। पर सबके सब पालने में से ही उठ गए थे। बस सोते-सोते अचानक सांस लेना बंद कर देते। सवेरे एक नन्ही-मुन्नी लाश ही मिलती।

नौकरों-चाकरों ने पालना बदलवाया। नये बच्चे को नौकरों के बच्चों

की पुरानी उतरन तक पहनाकर नज़र बचाई। बोरी में लपेटकर पांच बार आंगन में घसीटा जिससे होनी की नज़र लाड़ला समझकर बच्चे पर न पड़े। डाक्टर साहब ने विलायत तक से दवा मंगवायी पर तकदीर नहीं पलटी। मालकिन के दिल पर सनाका रह गया। पांचवें बच्चे की लाश गोद में लिए-लिए उन्होंने प्राण छोड़ दिए।

तभी से गनपत ने कुंवारे रहने की कसम खा ली। कहता :

"क्या करना है ससुर, घर बसाके। मेरठ शहर के ऐसे नामी-गिरामी वकील, किशोरचन्द्र, मेरे मालिक! और क्या मिला उन्हें घर बसाकर, पांच संतानों का दुःख!"

गनपत के ब्याह के बहुतेरे खत आए गांव से। फिर उसे कहने-सुनने वाले ही परलोक सिधार गए और गनपत रह गया निपट अकेला, जिसके आगे न कोई टोक और पीछे न कोई परछाईं।

मालिक भीतर चले गए तो रहमतुल्ला कोचवान ने रोज़ की तरह जगेसर घसियारे को हिदायत दी :

"घोड़ी खोल ले बे, और नीम तले बांध दे। टमटम मैं अंदर करूंगा। तुझसे खरोंच खा जाएगी।"

"आज घोड़ी की वो बढ़िया खरहरी करूंगा कि खाल चमक उट्ठेगी। तुम भी ज़रा अपनी टमटम चमका लेना, नहीं तो दलिद्दर लगेगी घोड़ी के आगे। पंद्रह रोज़ से गाड़ी के पालिस का हाथ तो मारा ना हैगा और कह रये हो कि मेरे से खरोंच खा जाएगी।" जगेसर ने जवाब दिया।

घोड़ी को जगेसर और रहमतुल्ला, दोनों सच्चे दिल से चाहते हैं। रहमतुल्ला ने उसका 'बीबी जान' नाम रखा था।

जगेसर ने घोड़ी गाड़ी से अलग की और उसका साज उतारने लगा फिर उसका कंधा सहलाता उसे नीम तले बांध आया। दो-चार धौल-धप

घोड़ी के पुट्ठों पर दिए और लाड से बोला -

"आज तेरी वो मालिश करूंगा, और खर्रा फिराऊंगा कि तेरी खाल गोरे साहब के बूट जैसी चमकारा मारेगी।"

कुछ देर घोड़ी से बतियाकर ही वह कोठरियों की तरफ हुआ, और जाते ही अपनी बेटियों से घिर गया। अंधेरा पड़ गया था।

जगेसर की सावली छवि वाली पत्नी रतनी, जो कोठी के अंदर बर्तन-चौका किया करती थी, चूल्हा फूंक रही थी। उसके सावले, तीखे नयन-नक्श पर दहकती आग की लाली रह-रहकर चमक जाती। हल्का-सा पसीना मुख पर ऐसे बिछा था जैसे अबरक बिखरी हो।

गनपत को वक्त-बेवक्त, अहाते से रतनी को बर्तन मलने बुला ले जाना पड़ता। कभी खाना जल्दी हो जाता, कभी मेहमानों के आने पर फालतू बर्तन निकल आते, जो रसोई में भिन्नाते उसे जरा न सुहाते। मालिक से निबटकर गनपत रतनी को टोकने पहुंच गया।

"रतनी, आज मालिक जल्दी खाएंगे। तू जल्दी आकर बर्तन माज दीजो।"

"अच्छा। अपनी रोटी करके आ जाऊंगी।" रतनी ने जवाब दे दिया, तब भी उसके मुख की ओर बरबस ताकता गनपत पांच मिनट और वहां ठिठका रह गया।

'ये रान जी को भी कुछ खबर नहीं दीन-दुनिया को। किसी-किसी को रूप देकर बस, सो रहते होंगे। और यहां ससुर, दुनिया वाले आफत में पड़ जाते हैं।' उसने मन ही मन सोचा।

# नीम तले

इतवार की रात को काम से निवटकर गनपत दरी-खेस समेत अपनी बाण की खाट लेकर नीम तले आ गया। सोचा, आज रात वहीं पड़ रहेगा— वहां अहाते में कौन उसकी औरत बैठी है हिसाब मांगने को। गनपत ने एक सस्ती सिगरेट सुलगा ली और खाट पर बैठकर कश खींचने लगा। रहमतुल्ला एक खस्ता हाल मोढ़े पर पहले से ही रौनक-अफरोज था। पेच-वान की सटक रईसाना अंदाज में मुंह में अटकी थी। चिलम में आज खमीरी तंबाकू भरी थी। नूरी ने सुबह उसके कान में कुछ ऐसी खबर फूल-फुला दी थी कि खुशी के मारे उसकी मुट्ठी खुल गई थी।

जगेसर अपनी सादा गुडगुडी लिए आया और बोरी डालकर बैठ गया। बनफुलवा मिट्टी की सौंधी सुगंध का मोह नही छोड सका था। वह धरती पर ही पसरा था। हथेली की कुप्पी में भोरनी छाप बीडी खुसी थी। गनपत को देखकर उसने पास रखी पोटली थमाते हुए कहा -

"ई लेव हरा धनिया। कल की चटनी खातिर तोड लाए। तनिक मसल के देखो तो कइसा खसबोई देत है।" बनफुलवा हथेली पर हरे धनिये की पत्तिया मसल के दिखाने लगा।

"भाई जान, दुनिया की हर बेहतर चीज मसलने में खुशबू देती है, जैसे थारी खेती का अदरक-धनिया और गनपत की मसालेदानी का जीरा और .....''

"और ?" गनपत ने पूछा।

"अब और क्या कहू ? तू तो अभी कुवारा है।"

"बक भी चुक।"

"... ...और सीने में भिची औरत।"

"अरे धुत्त।" सभी झेप गए।

"निपटाय आये इतवारी खाना ? डागदर साव की मोटरवा गई का ?" बनफुलवा ने बात पलटते हुए कहा।

"हा आ......भाई, गई। आज मालिक और डाक्टर साब के बीच वो चुहलबाजी नही हुई। जाने क्यो दोनो सुस्त-सुस्त रहे।" गनपत ने बतलाया।

"भइया, सुस्त न रहिए तो अऊर का करिहे ? भरी जवानी मा दोनो रडुआ भये, कहा तलक गप्पबाजी तें जी बहिलावें।" बनफुलवा ने हामी भरी।

"अरे, मालिक की दूसरी सादी करा देओ।"

जगेसर ने मुस्काया तो रहमतुल्ला ने उसकी टांग खींची :

"अजी यार, बस रहने दे शादी की खुशहाली को। तू तो एकदम जोरू का गुलाम है और बोल ऐसे रहा है जैसे वो इसे रोज मीठे गुलगुले पकाकर खिलाती होगी।"

"अरे बस, रहने दो रहमत भाई। गनपती, तुझे पता है? आज फिर बेगम पुल के आरे-धोरे इनकी घोड़ी बिदक गई। अब हम पूछें, कि भला रोज पुलिया के नुक्कड़ पे ही इनकी घोड़ी काहे बिदके है? जनो घोड़ी बिदकाकर इशारा ही देते होंगे किसीको।" जगेसर ने भी बदला ले लिया।

"क्यों बे? कोई रहती-जाती तो नहीं उस तरफ?" गनपत ने चस्का लिया।

"अबे चुप! खाट खड़ी कर दूंगा तेरी तो, जो ज़ियादह बोला। और फिर, खूबसूरत चीज को देख लेने-भर में क्या है? बनफुलवा नहीं बाग के फूल देखकर खुश हो लेता?" रहमतुल्ला ने कहा।

"कौन है ये?" गनपत बाज नहीं आया तो बनफुलवा ने टोक दिया।

"अरे वाह रे गनपतवा, कोचवान जात की तो चोखी-भली घर ना बैठी हुई। रहती-जाती तो तेरी हुइगी रे, कहूं!"

"जाओ भी। मैं उन बातों में नहीं हूं। देखते नहीं किस मालिक की सोहबत में हूं। मालिक नहीं रह रहे इसी बखत मे? बस फिलव होइगए, नहीं तो कनून की पचेसरी पोथियां लेकर कचेरी में बैठ गए। भोर हुई तो बाजिन से जिसन की सुस्ती उतार दी।"

"……अकर बोलि-चालि को जी चाहा तो डागदर साहब की कोठी तलक टहल आए। ना किसीके तीन में ना पांच में।" जगेसर ने हामी भरी।

"हां……ओ भइया, हम-तुम नेक होयां बैठि के बतिया तो लेत हैं, अकर, भीतर अहाता मां तो एकौ नाहीं, तीन-तीन लुगाई का चक-चक

चक्की चलत हुई। बिगड़-बिगड़, अऊजार निपारी ज्यों-त्यों करत फिरत हुई।" धनफुलवा ने जम्हुआई लेते हुए जोड़ा।

"रहमत भाई की और सुनाउ तुम्हें? नरसों, मालिक तो डागदर सा'ब को लेकर किलब उतर गए। हम टमटम के पैताने बैठे खैनी मसल रहे थे। तो, इते में इन्होंने घोड़ी दौड़ा दी। और हम कुछ कह, उससे पहले ही हम समेत टमटम ले जाके खड़ी कर दी कटवालों के कूचे में। हमारे तो पिरान निकल गए। नीचे कव्वाली हो रई थी और ऊपर छज्जा में, जाने कैसी-कैसी सुर्खी-पौडर वाली आके लटक गईं। हमने जो रिगाय के उनकी तई ताका, तो एक ने तो पिच्च से हमारे ऊपर पीक थूक दई। हम इनके हाथ-पैर जोड़े, कि चलो अब, दूसरे दिन अपनी वास्ताई दिखाना, पर यह तो खट्टे-मीठे के स्वाद में ऐसे भूले थे, कि क्या कहें!" जगेसर मजे लेकर बोला।

"क्या बोल थे बे, कव्वाली के?" गनपत ने रहमतुल्ला के टहोका मारकर पूछा।

"अबे, हुक्के का पानी पिला दूंगा, जियादह बोला तो।" रहमतुल्ला ने बनावटी नाराजगी दिखलाई, तो गनपत जरा गुजारिश के लहजे में बोला:

"सुना दे यार, जरा हम भी तो सुनें।"

कोचवान साहब पेचवान की सटक मुंह से निकाल रंग में आने लगे।

"लो, तो सुनो, गन्ना सा'ब, हम तुम्हें तरन्नुम में सुनाते हैं.

ये मेरठ वाले क़यामत की नजर रखते हैं,

काली जुल्फ़ों पे तिरछी टोपी कसते हैं।"

"अबे तान तो दो! क्या बैताल-सूदम-सा देख रहा है?"

"ये वेदाल-सी क्या कही तुमने ? इसके कुछ माने-वाने भी हैं कि वैसे ही फिकरा पका लिया ?" गनपत ने पूछा।

"वेदाल-वूदम। वूदम के वीच का दाल हर्फ उड़ा दें, तो वना वूम। समझे ना ? और वूम माने तू, यानी के उल्लू।"

कोचवान ने समझाया।

"धत् तेरी की। दाल-फाल तो हमारी समझ में ना पड़ी पर खैर, तुमने इस गनपती को उल्लू तो कह ही दिया।" जगेसर ने ताली पीटकर ठहाका लगाया। फिर वोला, "और वो भी तो सुना दो रहमत भाई, वो जो खुल्ले में ही आन कर नचनिया ठुमकने लगी थी। क्या वोल थे गीत के ? हां, हाथ में दोना, दोने में कलाकंद, सइयां कहां गये थे ?"

'कलाकंद' शव्द पर जोर देकर जो जगेसर ने अपनी गरदन को जुम्विश दी, तो सभी ताली पीट गए।

"आगे तो सुना।" गनपत ने कहा।

"अव अगाड़ी की ये रहीस जानें। अपनी तो इत्ते में ही हवा खिसक ली थी।"

अव की वार कोचवान साहव पेचवान की सटक फेंककर खड़े हो गए और एक पांव का ठुमका लगाकर तान खींच मारी :

हाथ में डिव्वा, डिव्वे में साड़ी वंद······सइयां कहां गये थे···

अव तो सवने एक साथ मिलकर आखिरी वोल उठा दिए :

अरे हाय-हाय, सइयां कहां गए थे, अरे सइयां······

शोर सुनकर अंदर से नन्हे रोता हुआ भागा चला आया और रहम-तुल्ला की टांगों से लिपटने लगा।

"अव्वा, हम भी यहां वैठकर कव्वाली गाएंगे···अम्मी तो मारती हैं।"

"लो ! बाप ने मारी मेढकी और बेटा तीरन्दाज़ ! एक सुर तेरे अब्बा ने उठाया था और एक अब तू उठा !" गनपत ने मज़ाक किया।

"बस, हुई गवा राग-रंग ?" कहकर बनफुलवा उठने को हुआ, तभी उसे मनवा की पुकार भी सुनाई पड़ गई।

"बापू ̈ ̈ ओ बापू !"

"रे मनवा, बापू को गोहराय लेव।" चपी ने पीछे से आवाज़ दी।

"अब गोहराय तो रहत हई। अऊर का ढोल बजायी ?" मनवा ने जवाब दिया तो बनफुलवा फुर्ती से भीतर को भग लिया।

"स्साला ! जोरू का गुलाम !" सबने ताना दिया।

"जाई, घोड़ी खातिर चना भिजा आई।" जगेसर उठ गया। पलटकर आया तो केवल गनपत को ही चारपाई पर बैठा पाया।

"हम कहे, कै बज लिया होगा ?...... अब तलक मालिक जगे बैठे हैं ...... लैबरेरी की बत्ती अब तलक जली है।" उसने बताया।

गनपत उठ गया और लाइब्रेरी की तरफ हो लिया।

चबूतरे पर चढ़कर देखा, मालिक एक अंगुली होंठों पर रखकर चुप-चाप पोथी बाच रहे हैं। चारों तरफ कैसी तो चुप्पी छाई है। पर, चबूतरे पर तमाम चांदनी छिटकी है। पीले गुलाब बड़े-बड़े सितारे-से बेल में गुथे हैं। पर, मालिक को उस सबसे कोई सरोकार नहीं।

मालिक का जीवन तो जैसे बड़े हॉल की दीवाल-घड़ी की भांति एक ही ठौर पर टिकटिका रहा है। गनपत जिसे जीना कह सके वैसा कुछ भी तो मालिक के साथ नहीं घट रहा। "एक वह पिछवाड़ा है, इसी कोठी का कि पांव धरते ही रेलवाई का यारड याद आ जायेगा। जिधर ताको बस उधर ही कोई ना कोई इंजन भकाभक धुआं छोड़ रहा है।"

इसके बाद गनपत से नीम तले नहीं पड़ा गया। वह खाट उठाकर

"ये वेदाल-सी क्या कही तुमने ? इसके कुछ माने-वाने भी हैं कि वैसे ही फिकरा पका लिया ?" गनपत ने पूछा।

"वेदाल-बूदम। बूदम के बीच का दाल हर्फ उड़ा दें, तो बना बूम। समझे ना ? और बूम माने तू, यानी के उल्लू।"

कोचवान ने समझाया।

"धत् तेरी की। दाल-फाल तो हमारी समझ में ना पड़ी पर खैर, तुमने इस गनपती को उल्लू तो कह ही दिया।" जगेसर ने ताली पीटकर ठहाका लगाया। फिर बोला, "और वो भी तो सुना दो रहमत भाई, वो जो खुल्ले में ही आन कर नचनिया ठुमकने लगी थी। क्या बोल थे गीत के ? हां, हाथ में दोना, दोने में कलाकंद, सइयां कहां गये थे ?"

'कलाकंद' शब्द पर जोर देकर जो जगेसर ने अपनी गरदन को जुम्बिश दी, तो सभी ताली पीट गए।

"आगे तो सुना।" गनपत ने कहा।

"अव अगाड़ी की ये रहीस जानें। अपनी तो इत्ते में ही हवा खिसक ली थी।"

अव की वार कोचवान साहव पेचवान की सटक फेंककर खड़े हो गए और एक पांव का ठुमका लगाकर तान खींच मारी :

हाथ में डिब्बा, डिब्बे में साड़ी वंद······सइयां कहां गये थे···

अव तो सवने एक साथ मिलकर आखिरी बोल उठा दिए :

अरे हाय-हाय, सइयां कहां गए थे, अरे सइयां······

शोर सुनकर अंदर से नन्हे रोता हुआ भागा चला आया और रहमतुल्ला की टांगों से लिपटने लगा।

"अव्वा, हम भी यहां वैठकर कव्वाली गाएंगे···अम्मी तो मारती हैं।"

"लो ! बाप ने मारी मेढ़की और बेटा तीरन्दाज ! एक गुर तेरे अब्बा ने उठाया था और एक अब तू उठा !" गनपत ने मजाक किया।

"बस, हुई गवा राग-रंग ?" कहकर बनफुलवा उठने को हुआ, तभी उसे मनवा की पुकार भी सुनाई पड़ गई।

"बापू ····ओ बापू !"

"रे मनवा, बापू को गोहराय लेव।" चपी ने पीछे से आवाज दी।

"अब गोहराय तो रहत हई। अऊर का ढोल बजायी ?" मनवा ने जवाब दिया तो बनफुलवा फुर्ती से भीतर को भग लिया।

"स्साला ! जोरू का गुलाम !" सबने ताना दिया।

"जाई, थोड़ी खातिर चना भिजा आई।" जगेसर उठ गया। पलटकर आया तो केवल गनपत को ही चारपाई पर बैठा पाया।

"हम कहें, कै बज लिया होगा ? ·····अब तलक मालिक जगे बैठे हैं ······लैबरेरी की बत्ती अब तलक जली है।" उसने बताया।

गनपत उठ गया और लाइब्रेरी की तरफ हो लिया।

चबूतरे पर चढ़कर देखा, मालिक एक अंगुली होंठों पर रखकर चुपचाप पोथी बांच रहे हैं। चारों तरफ कैसी तो घुप्पी छाई है। पर, चबूतरे पर तमाम चांदनी छिटकी है। पीले गुलाब बड़े-बड़े सितारे-से बेल में गुंथे हैं। पर, मालिक को उन सबसे कोई सरोकार नहीं।

मालिक का जीवन तो जैसे बड़े हॉल की दीवाल-घड़ी की भांति एक ही ठौर पर टिकटिका रहा है। गनपत जिसे जीना कह सके वैसा कुछ भी तो मालिक के साथ नहीं घट रहा। "एक वह पिछवाड़ा है, इसी कोठी का कि पांव धरते ही रेलवाई का यारड याद आ जायेगा। जिधर ताको बस उधर ही कोई ना कोई इंजन भकाभक धुआं छोड़ रहा है।"

इसके बाद गनपत से नीम तले नहीं पड़ा गया। वह खाट उठाकर

"ये वेदाल-सी क्या कही तुमने ? इसके कुछ माने-वाने भी हैं कि वैसे ही फिकरा पका लिया ?" गनपत ने पूछा।

"वेदाल-वूदम। वूदम के बीच का दाल हर्फ उड़ा दें, तो बना वूम। समझे ना ? और वूम माने तू, यानी के उल्लू।"

कोचवान ने समझाया।

"धत् तेरी की। दाल-फाल तो हमारी समझ में ना पड़ी पर खैर, तुमने इस गनपती को उल्लू तो कह ही दिया।" जगेसर ने ताली पीटकर ठहाका लगाया। फिर वोला, "और वो भी तो सुना दो रहमत भाई, वो जो खुल्ले में ही आन कर नचनिया ठुमकने लगी थी। क्या वोल थे गीत के ? हां, हाथ में दोना, दोने में कलाकंद, सइयां कहां गये थे ?"

'कलाकंद' शब्द पर ज़ोर देकर जो जगेसर ने अपनी गरदन को जुम्विश दी, तो सभी ताली पीट गए।

"आगे तो सुना।" गनपत ने कहा।

"अव अगाड़ी की ये रहीस जानें। अपनी तो इत्ते में ही हवा खिसक ली थी।"

अव की वार कोचवान साहव पेचवान की सटक फेंककर खड़े हो गए और एक पांव का ठुमका लगाकर तान खींच मारी :

हाथ में डिव्वा, डिव्वे में साड़ी वंद······सइयां कहां गये थे···

अव तो सवने एकसाथ मिलकर आखिरी वोल उठा दिए :

अरे हाय-हाय, सइयां कहां गए थे, अरे सइयां······

शोर सुनकर अंदर से नन्हे रोता हुआ भागा चला आया और रहमतुल्ला की टांगों से लिपटने लगा।

"अव्वा, हम भी यहां वैठकर कव्वाली गाएंगे···अम्मी तो मारती हैं।"

बोलती तो कैसे शान्त, ठहरे-से शब्द झरते। वाणी में जैसे मन्दिर की घंटियां टनटना उठतीं।

तड़के आंख खुली तो गनपत ने देखा आंगन के हरसिंगार ने टोकरा-भर नाजुक फूल सहन में छितरा दिए हैं।

मन कसमसा गया। कैसी उमंग से मालकिन खुद ही उन्हें चुना करतीं। उन दिनों की रौनक ही न्यारी थी। मुनयारा, मनिहारा, जोतिस-विद्वान—सभी कोठी के चक्कर मारते रहते।

बहुत उदास सुबह हुई थी। पर सवेरा कुछ सरकने ही कोठी में नौकरों की आवा-जाही शुरू हो गई।

चपी-रतनी ने अपनी खनक-ठनक शुरू कर दी थी।

बल्कि बनफुलवा तो एक टोकरा लादे हाजिर हो गया। सिर से टोकरा उतार भूमि पर टेकता बोला

"ई लेव, मालिक खातिर सर्वत बनाओ बेलन का। बाकी चाहे बांटो चाहे फेंको। हम बगीचा की पैदावार लाई दीन्हें।"

बनफुलवा ने 'बेल' का गेंद-सा एक फल जमीन पर पटककर तोड़ा.

"ई देखो, गुड़ की भेली जैसा धरा है फल। ओ रतनी, चिम्मच तो पकड़ा तनिक।"

रतनी ने चम्मच पकड़ा दिया। बनफुलवा ने फल का गुदगुदा, पीला गूदा खुरचकर, चम्मच गनपत की ओर बढ़ा दिया, "चाखो।"

गनपत चखते ही बोल उठा, "बिल्कुल बताशा है रे। आज दोपहर के खाने के साथ मालिक को इसीका रस दूंगा। रख जा यहीं।"

बनफुलवा टोकरा देकर चला गया। चपी और रतनी ललचाई-सी बेलों को तकने लगीं तो गनपत ने दरियादिली से कह दिया :

"अरी पिरान मत दो। ले जाओ दो-दो उठाके। और दो नूरी बेगम को भी दे दो।"

उस रोज़ अहाते के बच्चों के मुख से बेल का गाढ़ा-पीला रस ही चिपका रहा। नन्हे और छुटकी तो पूरे के पूरे ही बेल के रस में सन-पुत गए थे। गनपत का मन भी अहाते वालों में बहला-बहका रहा।

# बड़ी बी

रहमतुल्ला की बीवी का अहाते के अंदर पर्दा नहीं था, पर कोठी से बाहर वह पूरे तौर से पर्दानशीन थी। सारी कोठी का तो उसे जुगराफिया भी नहीं मालूम था।

रमज़ान के दिनों में बड़ी बी भी आ गई थीं।

बड़ी बी बाण की खाट डाले, उसपर निगहबानी के अंदाज़ में डटी रहतीं और अपने बरखुरदार के इलावा हर किसी मर्द को आगाह किए रहतीं कि जनाना ड्योढ़ी में ज़रा खखार के घुसा करें ताकि बहू-बेटियां पर्दे में चली जाएं। गनपत बावर्ची पर तो उन्हें शको-शुबहा बना ही रहता।

"मुआ, विने खूंटे का वैल है, छड़े जैसा घूमता रहता है, सब तरफ।"

गनपत भी उनकी रोक-टोक पर खूब बड़बड़ाता, "दांत के नाम पर बुढ़िया का मुंह काली गुफा है। गये दिनों की चावी गिलौरियां याद कर-करके, फक-फक खाली मुंह चलाया करती है और हमें टोका करती है।

"बड़ा तो नूर बरस रहा है इनकी बहू-बेगम के मुखड़े पर। देखते ही तो उगालदान और सुरमेदानी याद आ जाती है। मिचमिची आंखों में सुरमे की सलाइयां चलाती रहेगी। मुंह पीक से लिवलिवा हुआ रहेगा। गाल पिचककर फूटा तसला हुए पड़े हैं। और इस रूप के लिए खंखरवा-खंखरवा के गले में फांस-सी गड़वा दी है। अरे, इतनी इज्जत तो मैं अपनी अम्मा की भी नहीं करता जित्ती नूरी बेगम की करता हूं।"

एक दिन ऐसी ही वक-झक चल रही थी। गनपत आया था रतनी को बुलाने।

"अरे, क्यों पर्दा कराती हो बड़ी बी? नाक तो तुम्हारी बहू की साढ़े तीन इंची की ऐसे धरी है कि मिर्चा फोड़ता तोता याद आ जाए।" गनपत बड़ी बी को चिढ़ा ही रहा था कि नज़र रतनी पर जो पड़ी तो मानो भरी बदली में बिजली-सी कौंध गई। माथे से लेकर चुटिया तलक सिंदूर से अटी मांग। नाक में नथनी झुलाती वह पांव की बिछिया दबाकर कस रही थी। लाल बुन्दकियों वाला नया जम्पर और काली छींट की साड़ी। गनपत के मन पर राम जाने क्यों आरी-सी चल गई। पर तभी उसे कुछ गुस्सा भी आ गया। अब, राम जाने, अपने पर या रतनी पर।

"अरे, चल री रतनी। वहां हमारी रसोई भिन्ना रही है और तू यहां बैठकर टिकुली-हंसली लगाए है। वहां जगेसर बेचारा घोड़ी खातिर घास काटता फिर रहा होगा और तू बैठ के उसकी कमाई लुटा। बर्तन घिस

चल के और यह निगार-पिटारा ताक में रख उठाके। अच्छा ही हुआ था मैं कुवारा ही रह गया।"

'तो अब भी क्या बिगड गया, देवर जी ? ले आओ ना कोई छबिला तुम भी। छन-छन करती आगन मे डोलेगी और काम-काज मे हमारा हाथ भी बटाएगी।" रतनी ने चितवन साधकर जो जवाब दिया तो गनपत को पसीना आ गया।

वह मन ही मन भुनभुनाया :

"जो मेरी औरत यो नाज-नखरा करती फिरती तो चूल्हे की लकड़ी से खबर लेता।"

बड़ी बी ने हिकारत की नजर रतनी पर डाली और जड दिया :

"इस औरत का बस चले तो मुर्दार, शौहर को बाजार मे बेचकर कौडिया बना लाये।"

फिर बड़ी बी ने अदर झाका। नूरी ओढनी-चिलमन के अदर महफूज थी और मन लगाकर सेवइया तोड रही थी। छोटी हाजिरी लगाकर गनपत मालिक के आगे ट्रे रखकर बोला :

"हुजूर, वो आज ईद है। रहमतुल्ला के बाल-बच्चो ने ईदी बटेगी। इस्तारी तो मैंने दे दी थी।"

"हा, हा। यह लो पचास है। बाकी के बच्चो को भी देना, नही तो उन्हे अच्छा नही लगेगा।"

"जी, ईद के मेले पर जाना चाहते है सब लोग। आप कहे तो टमटम ले जाए हम लोग।"

"ले जाना। पर, तीन बार में जाना। घोडी के ऊपर एकसाथ बोझ मत डालना।"

"जी, बहुत अच्छा।"

"तिऊहार आए गवा, पर ई मनई के तो कछु खबेरई नांही परत।"

दिवाली से पहले चंपी ने बनफुलवा को झींकना शुरू किया।

"अरी, ओ······बड़की। मेरी बांकड़ी लगी साड़ी अभी से मटक ली? सींग उग आए हैं न? ऐसी खबर लूंगी कि सब चौकड़ी भूल जाएगी।"

सजी-बनी रतनी बड़की पर चीख पड़ी तो अहाते में घुसता गनपत फिर से खंखारना भूल गया। रतनी को घुड़कने लगा :

"अरी, बस री। ज़रा-सी बच्ची को फाड़ खाने को पड़ रही है। आने दे जगेसर को। पूछूंगा, बच्चियों पर यह कसायन काहे छोड़ रक्खी है। चल कड़ाई दे मांज के, रबड़ी चढ़ाऊंगा।"

"अय मियां, ज़रा खंखार कर······"

बड़ी बी का मुंह इतनी देर से टोकने को खुला ही रह गया था। उनके टोकने से पहले ही गनपत पलट लिया।

"तेरा बैल का मुंह हो। जब देखो, मुश्टंडा ज़नाने में यों घुसा चला आता है, जैसे गन्ने के खेत में हाथी। तुम चटोरियों को माल लाके चटा जाता है, इसीसे तो सर चढ़ा रखा है उसे! हमें तो उसकी डेगची का पसंद भी नहीं आता।

"एक ज़माना था, जब मेरा शेर-बच्चा शोरबे के प्याले में लुकमा तर-बतर करके ज़ुबां तक लाता था। रकाबी में कबाबों की जोड़ी अलग से रहती थी। तुम लोगों में रहकर तो अब यह भी बालाई-सालन से लगाकर निवाला सटकने लगा।" बड़ी बी कुछ देर कुड़कुड़ाती रहीं।

दिवाली के लिए गनपत ने दो गधों की लदान-भर दिये खरीदे। सारा अहाता हफ्ता-भर रुअड़ की बत्तियां बंटता रहा, तब जाकर सब दियों के

लिए पूरी पड़ी। तीन कनस्तरी तेल खप गया। रहमतुल्ला और गनपत ने मिलकर चबूतरे की खास आराईश की।

गनपत बोला :

"कोठी तो ऐसे जगमगा गई है, भाई, मानो अभी मुह खोलकर बोल पड़ेगी।"

छाबड़ी भर-भरकर कई घान पूरियों के उतारे। खीर का बडा भगौना चढ़ाया था, पर अहाते के बच्चों में कम-सी ही पड़ गई।

बनफुलवा ने बच्चों को टोका :

"खीर कमती नाही पडेगी ? हुआ साव लोग तो चिमचा में घर के जुवान से छुलाइहैं। अऊर ई समुर, भरा कटोरा मुंह मे अन लगा देत हैं, जनो बगीचा मा टूब से पानी देत हो।"

"अच्छा, देवर जी, तुम तो मालिक के ऐतना मुह लगे हो, कहते क्यों नही उनसे कि अब टमटम छोड़कर एक ठो मोटर रख छोड़े।" खीर चाटती रतनी ने गनपत से कहा।

"अरे डाक्टर साब भी तकाजा करते हैं। पर मालिक को पिटरौल की बास सुहावे तब ना।"

"अरे, हमहू मोटरवा ना सुहाती। टमटम का नियारा ठाठ हुई।" चंपी बोल उठी।

"अरे, हा, हा। तू ही तो नव्वाब लग्गी है महर मा। इसीसे तो मालिक टमटम राखे है, तोहार खातिर।" गनपत ने चंपी की नकल उतारते हुए कहा।

ईद हो या दीवाली, अहाते की कोई भी कोठरी उससे अछूती नही रह पाती। "बस मालिक का त्योहार इतने से ही मन जाता। वह खुद तो उस रोज कुछ भी नया नही करते।" गनपत सोचता।

# ज़नाना वार्ड

"अरी रतनी, अब की तो बड़ी बी गांव पलटने का नाम ही ना लेतीं ! यहीं से जनाज़ा उठवावेंगी क्या ?" गनपत ने खासा तंग आकर पूछा।

"जावेगी। जाप्पे पीछे।"

"अंय ! नूरी का जाप्पा ?"

"हां।"

"राम-राम। तू भी तो घोर आलसन हुई जा रही है। तुझे भी छूत लग गयी क्या ?" गनपत ने छेड़ा।

रतनी आंचल का छोर दांत-तले दाबकर हंस दी। झाड़ू निकालती

चपी बोल पड़ी :

"अरे चुपाय ! गनपतवा, चुपाय ! तोहार लाज-सरम नाही। बाकी रतनी ते सच्चो ही जादे किल्लत ना होई। ओका हाल ठीक नाही।"

"क्या ??"

कुछ ही रोज बाद गाव से जगेसर की वेवा बुआ आ धमकी।

आगन मे सोटा फटकारके बोली :

"रतनी, तू चौका-बर्तन खातिर चौका मे न घुसी। ऊ सब हम करी।"

"येल्लो।" गनपत कहता ही रह गया। रतनी ने चुपचाप आचल माथे तक खिसकाया और कोठरी की राह ली।

कुछ दिन तो गनपत ने बुआ को और बुआ ने उसे सह लिया। फिर एक दिन गनपत नीम तले की बैठक में जगेसर के सामने बड़बड़ाता सुना गया :

"पूरी लंका-झाड है जगेसर, तेरी बुआ। बड़ी बी की सोहबत में रह-कर वो भी परदेवाली हो गई है। मेरे अहाते में घुसते ही बुआ के बदन पर काटे उग आते हैं।"

अंदर, कोठी के भीतर, गनपत अपनी कुढ़न चंपी पर उतारता सुनाई दिया :

"जादे नखरा से काम ना चली, चंपी। जरा दम मार के, डटके पोचारा करे का होई।"

"अरे हट रे, ऊतनी के। उसके पिछाड़ी काहे लगा है ? वो नाही कर सकत डटके पोचारा। ओ का पाव भारी है।" जगेसर की बुआ बोली।

"लो पड़ गयी पूरियां। यह भी गई काम से। अहाता तो हम जाने, जनाना वारड बन गया। क्यों री चपी, तेरे गांव से कोई बुढ़िया-खूसट ना आने की ?"

"नासपिट्टा, मुंहफट !" बुआ ने कोसा।

"काहे बुआ ! तुम्हारी वहुरिया लौंडियों की फसल तैयार करके बड़ी भारी कमाई काढ़ रही है क्या ? वेफजूल ही कोठी में काम का नुसकान हो रहा है।" गनपत ने चिढ़कर कहा।

"हम करत नांही हैं, तोहार कोठी का काम ?" बुआ ने तमककर पूछा।

कुछ रोज़ वाद ही गांव से चंपी की अम्मा भी आ गई। गनपत ने देखा तो वनफुलवा से वोला :

"लो, जित्ते काले मेरे वाप के साले ! अम्मा की रंगत तो चंपी से भी गहरी है। काली......कुट-कुटिया, दियासलाई-सी सास है तेरी। पर वोले कम है। घुन्नी होगी।"

वड़ी वी का पड़ोस तो आवाद हो गया। पर, गनपत अपनी संदूकची और दरी-खेस ले जाकर रसोई में पटक आया, वोला :

"ससुर, तीन-तीन लंका-झाड़ वुढ़ियों से कौन निपटेगा। सन के-से वाल खोले, तीनों हमारी जान को आए रहेंगी। अरे, वड़ी वी, तुम्हारे ही आने पर इन सवके छूत लग गयी। अच्छी-भली काम पे आती रही थीं दोनों।"

पर चंपी काम पर डटी रही। गनपत कुढ़ता रहा।

"क्या पोचारा फिरा रही है, जैसे मक्खी उड़ा रही हो। तू भी अम्मा को ही भेज देना काम पे। एक हमारी मालकिन का ही नसीव फूटा रहा। वहां देखो तो, दो टके की लुगाइयां दनादन वच्चे जन रही हैं।"

मृत मालकिन की वात सुनकर जगेसर की वुआ वर्तन मलती हाथ रोक लेती और कलेजे पर रखकर उत्सुक विस्मय से पूछती :

'काहे रे गनपतवा ! तोहार मालकिन काहे ते चल वसीं भरी जवानी मां ? अऊर वचवा काहे पिरान छांड़ि देत रहे ?"

"अरे छोड़ो वुआ, काम से लगो अपने। और वो रतनी भी अगर

साल के साल हरी होती रही तो, फिर राम जानें, जगेसर की कच्ची गिरस्थी को कौन खेहे।"

"तोर नजर पे धूल परे। मुह मा कीट परे। काहे कोनत है, हमरी बहुरिया के?"

बुआ पटक-पटककर बर्तन मलने लगतीं और गनपत को बहुत पुराना फिर से याद आ जाता। मालकिन की उल्लसित-आलोडित वह बाहें याद आ जातीं जो सुबह-सबेरे पालने में लाल ढूढतीं, दुलार से पहुचतीं और फिर सहमकर वहीं पाषाण हो जातीं। फिर वही बाहें मृत बच्चे को उठाकर कलेजे में भींच लेतीं और छाती में घुटते रुदन पर लाचार, बेबस-सी लरजती रह जातीं। पाच बार गनपत ने वे मनहूस सबेरे देखे थे। कोई भी पालनों में इन मौतों का राज़ न समझ सका था।

सबसे पहले अहाते में चपी की अम्मा ने कासे की थाली बजाई। टन्-टना-टन्!

गनपत आधी रात में नींद से हड़बड़ाकर उठा और अहाते की ओर भाग लिया।

"क्या हुआ?"

"अरे, हमार बिटवा आए गवा।" चपी की अम्मा ने विभोर होकर कहा।

"धत् तेरे की। हमने सोचा तूने कोठी में कोई ससुर चोर बढ़ता देख लिया।" गनपत ने कहा।

"ले गुड़ खा।"

गुड़ खाता गनपत अपने मन का चोर पकड़ रहा था। सच, उसने सोचा था कि रतनी के ही लड़का-बाला हो गया है। वह बनफुलवा से जाकर धौल-धप्प करने लगा। तभी नजर के सामने रतनी पड़ गई। कुछ दिनों से

दिखलाई ही नहीं दी थी। पूरी गुब्बारा हो गई थी।

"तू यहां गादा-हरामी कर रही है? उधर मालिक कह रहे हैं कि बर्तन वाली बाहर से लगा लो। बोल क्या जवाब दूं?" गनपत ने रतनी से यों ही कहा।

"और बीस-एक रोज़ रुक जाओ, देवर जी। जवाब मैं खुद ही आनकर दे दूंगी।" रतनी ने कजरारी आंखों की कोर को फड़काकर कहा।

'स्साली! जैसे बिल्लार का झुठारा दूध! न रखा जाए, न फेंका जाए।' गनपत ने कुढ़कर सोचा। पर इतने रोज़ बाद रतनी का सामने पड़ जाना आंखों पर ठण्डे जल का छींट-सा मार गया। कोठी में चंपी के हिस्से का काम बड़की ने संभाला।

इसके बाद नूरी की कोठरी के आगे हीजड़े नाचने लगे। गनपत मालिक की हाजिरी ट्रे में सजाकर ले जा रहा था, कि इतने में तबले पर थाप-सी मोटी तालियां बजने लगीं।

"अरे,गजब! इन हीजड़ों को सबसे अव्वल खबर पड़ जाती है। जाने इस बार कौन-सी होगी?"

गनपत के हाथ से नाश्ते की ट्रे गिरते-गिरते बची थी। वह कुछ ऐसी हड़दोंग में पड़ गया जैसे खुद ही लड़कपन में बाप बन गया हो।

मालिक के सामने खड़ा-खड़ा टोस्ट पर मक्खन लगाने लगा, तो छुरी फिसलकर ज़मीन पर जा पड़ी। 'जाने कौन-सी है?' उसने कुछ उत्सुकता से सोचा। इस बार टोस्ट ही फर्श पर छूट गया।

"क्या बात है, गनपत? बहुत थक गए हो? कोई तकलीफ तो नहीं? शाम को जाकर डॉक्टर साहब की कोठी पर जांच करवा आना।" मालिक ने कहा।

"जी नहीं साहब, मैं तो ठीक हूं। वो······ज़रा······अहाते में ही कुछ

तक्लीफ हो गयी है। ···· अंग्रेज़र के घर में। वो बिचारा बहुत घबराया है··· "मुझे बुला गया है, साब।" गनपत ने झूठ बोला।

"जाओ, जाओ, देख आओ जाकर।"

"जी।"

गनपत तेज़ी से अहाते में पहुंचा।

"अरे, क्या हुल्लड मचा रखा है ? मालिक अभी कचहरी भी नहीं······"

"अरे, गन्ना साब ! तुम एक बार और चचा बन गए। अपने नन्हे की पीठ पर भाई आ गया है।" रहमनुल्ला मूछों पर ताव देता बोला। फिर कोचवान साहब ने सर पर से चिकन की मलमली टोपी उतार फेंकी। ताक पर से उठाकर कपड़े में लिपटी कारचोबी की टोपी निकाली और सर पर ज़रा तिरछी करके रख ली। जच्चा-बच्चा दूसरी कोठरी में आबाद थे। सो, कोचवान साहब, गनपत के देखते-देखते ही अपने सारे कपड़े बदल गए। साफ-धुला नीम आस्तीन जामा सदूक में से निकल आया। उसपर जामदानी का एक पुराना अंगरखा। फिर गाढ़े का, पर नया चुस्त पायजामा।

"इतना इतज़ाम पहले से ही कर रखा था क्या ?" गनपत ने हैरत से पूछा।

"हां, भाई जान। पीली कोठी की नौकरी से पहले एक लुटे हुए नव्वाब के यहां नौकरी की थी। उसके पास हमारी चार महीनों की तनख्वाह जमा हो गयी। तो, जब हम अड़ ही गये, कि हमारी जमा लाओ, तो उस फक्कड़ नवाब ने पहले दो महीनों की तनख्वाह में ये टोपी पकड़ा दी। और, अगले दो महीनों की तनख्वाह में यह अंगरखा थमा दिया।

"फिर ?"

"अब, फिर तो तुम यह गाढ़े का पायजामा देख ही रहे हो। हमने उसकी नौकरी छोड़ दी।"

"अरे यार! दो महीने और टिके रह जाते तो एक ढंग का पजामा तो हो जाता तुम्हारे पास।" गनपत ने हंसते हुए कहा। फिर जोड़ा :

"इसी ठाट में मालिक को कचहरी छोड़ने जाओगे?"

"क्यों नहीं? रोज़-रोज़ हम लौंड़े के बाप बनते हैं? अरे, रोज-रोज़, हमारे दर पे हीजड़े......।"

सब हीजड़ों ने आकर गनपत समेत रहमतुल्ला को घेर लिया।

"परे हट बे, नहीं तो दूंगा एक थोबड़े पै।" गनपत जितना ही उनसे बचने की कोशिश करता वे उतना ही उससे लिपटने लगे।

"अरे गुले-बकावली, ज़रा इधर आन के तो अपनी छल्ले-सी कमर लचका दे! देख, ये मरद बहादुर कब से तरस रहे हैं!" ताली पीटता एक पहाड़-सा हीजड़ा एक छरहरी, लचकदार कमर वाली से बोला। वह करिश्मा फिरकी की-सी फुर्ती से जो गनपत की जानिब बढ़ा, तो गनपत की तो सांस ही नली में अटककर रह गई। बड़ी कठिनाई से वह उस चक्कर में से निकला और धाड़ से रतनी से जा टकराया।

"अरी, रतनी! राम कसम, तू तो चौथी लौंडिया को हजम करके ही बैठ गई।" वह बोला।

"और जो, देवर जी, मेरे घर इस बार लौंडिया ना हुई तो? बोलो, सोना वारोगे मेरी गोद पर से, जो लौंडा हो गया तो?" रतनी ने अंगुली को ठोड़ी के गुदने के पास टिकाकर मुस्कराकर पूछा।

'कहीं अगर सचमुच ही लौंडा हो गया तो ससुरी नखरे के मारे काम ही ना छोड़ दे।' गनपत सोच गया। बोला :

"मालिक ने तो कह दी है कि जो अहातेवालियों से कोठी का काम ना निवटे तो कोठरिया किसी दूसरे के नाम कर देंगे।"

"हा-हा! तू ही तो मालिक का खास हरकारा लगा है? तुझे सब खबर है मालिक के मन की। सौरी में एक कनस्तरी निखालिस घी की भेज दीजो। फिर देख, क्या गिलहरी-सी दौड़ी आऊंगी काम पे।"

"अरी जा, लौंडियों की अम्मा ना खाया करती निखालिस घी।"

पर अगले रोज गनपत ने थोड़ा-सा असली घी बड़की के हाथ भेज ही दिया।

एक रोज़ गनपत कढ़ी के पतीले में कलछुल चलाता कुछ सोच रहा था कि इतने में जगेसर की बुआ ने आकर चौखट पर धम्म से नारियल फोड़ दिया। गनपत का हाथ वहीं थम गया। एक बार ऐसे ही बूढ़ी रामदेई ने कोठी की चौखट से नारियल तोड़ा था। पर, तब तो मालकिन की गोद में छोटे मालिक आ गए थे। रंग कितना गोरा बुर्राक था जैसे दूध का उफनता फेन!

गनपत का गला 'छोटे मालिक, छोटे मालिक' पुकारते-पुकारते उनतालीस दिनों में ही कैसा सूख गया था! चालीसवें रोज़ से पीली कोठी में कोई 'छोटे मालिक' कहलाने वाला ना रहा। एक बार और भी यही कहानी भाग्य ने दोहराई थी। मालिक का दूसरा पुत्र भी न रहा था। "अरे, मौहर्रम की अऊलाद, आज-भर तो खुश हो ले। हमार घर भी बिटवा आय गवा।"

जगेसर की बुआ ने गद्गद होकर कहा:

"हुई? लौंडा? रतनी के?"

"तुम तो अस बिदकत हो, जनो हीजड़ा का घर मा बिटवा भवा। अब आज बासन-धुलाई ना हुई। हमका जच्चा खातिर गोंद-पंजीरी करे का है।"

"जाओ बुआ, जाओ। जच्चा-बच्चा देखो जाके।" गनपत ने खुश होकर कह दिया।

दोपहर के खाने के समय गनपत मालिक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

"क्या बात है गनपत ?" मालिक ने पूछा।

"हुजूर, आज मालकिन के कमरों की सफाई करनी है। बड़े वाले संदूक में ढेरों कपड़े पड़े-पड़े खराब जा रहे हैं। आप कहें तो उनमें से जो मामूली हैं, उन्हें निकालकर अहाते में बांट दूं ?"

मालिक चौंके। मुंह का कौर चबाकर धीरे से पूछा :

"कौन-से कपड़े ?"

"सरकार, छोटे-छोटे कपड़े। कोरे भी हैं।"

मालिक के गले में शायद कौर फंसने लगा। पता नहीं शायद मिर्च की झाल लग गई थी या क्या, आंखों में कुछ गीलापन-सा आ गया। बोले :

"वह कपड़े अब तक रखे हैं ? क्या होगा रखकर ? सब ले जाकर बांट दो। रहमतुल्ला बतला रहा था कि, अहाते में चार-पांच नये बच्चे हुए हैं ?"

"जी, आज वाले को मिलाकर तीन हुए हैं।"

"ठीक है। सब छोटे कपड़े बांट दो।"

"जी, मालिक वे तो ढेरों हैं।"

"तो बाकी के अनाथ आश्रम में दे आओ।"

गनपत चुपचाप खाना खिलाता रहा। संदूक में से उसने कुछ छोटे कपड़े छांट लिए। जो बहुत अच्छे थे, उन्हें धूप दिखलाकर वापस संदूक में रख दिया। सोचने लगा, यह डॉक्टर साहब इतने दोस्त बनते हैं मालिक

के, बस, इतनी-सी नेक सलाह नहीं दे सकते कि वह दूसरा ब्याह कर ले। 'साच्छात लक्ष्मी' ना रही पहले वाली, यह तो सोलहों आने सच है, पर जब रही ही नहीं तो क्या करें? डॉक्टर साहब के घर में चलो बाल-बच्चे तो हैं, पर यहां? बस भूतहा महल खड़ा है।

गनपत कपड़े लेकर अहाते में पहुंचा तो वहां ढोलक बज रही थी।

देवर जी, जइयो, रसगुल्ला लेकर अइयो।
मेरा मन रसगुल्ला मांगे रे।"

अहाते की औरतें गा रही थीं और बड़की, छुनी, बन्नो, छुटकी—सब-की सब नाच रही थीं।

गनपत जरा-सा झुककर रतनी की बगल में सोए लौंडे को देख रहा था कि रतनी ने चोरी पकड़ ली। एक आंख मींचकर पूछ लिया; "कितना सोना वारना लाए हो? क्यों छैला बाबू?"

कुछ रोज तो अहाते के तीनों छोटे बच्चे—नूरी का छोटे वाला, रतनी का छोटे वाला और चम्पी का छोटे वाला कहलाते रहे, फिर, अपने-आप ही छुटकी का भाई छुटका, बन्नो का छुट्टन और मनवा का भाई छोटे कहलाने लगे। चम्पी की अम्मा तो गांव लौट गई। बेटी के घर आखिर कितना ठहरती।

एक रोज हुचक-हुचक हिचकियां लेती जगेसर की बुआ छुटके को गोद में उठाए कोठी में घुसी और बोली:

"गनपतवा! गजब हुई गवा!"

"काहे बुआ! बड़ी हिचकियां आ रही हैं? गांव में कोई याद कर रहा है, दीखे।" गनपत ने आशा से कहा।

"अरे, गाम वाले सब मुरदा भये। कोई ना सुमरे हमका।"

"तो तुम ही क्यों जिन्दी बनी रह गयीं, हमरी छाती पे मूंग दले

खातिर ? गांव नहीं जाओगी ?" गनपत ने पूछा ।

"अरे जाऊंगी ससुर, और दस दिनां मां । मेरी बात तो सुन ले, दाढ़ी-जार ।"

"सुना बुआ ।"

"छोटी कोठी की किरायदारन रही ना ? कृस्तान मास्टरनी ?"

"हां ।"

"ओ अहाता के सगरे बचवा पकड़ लीन्हे ।"

"क्या ?"

"परचा लुटाती सनीमा की गाड़ी आय रही । भीतर से बाजा बजता रहा । बचवा पिछाड़ी दौड़के परचा लूटन लागे । बस, हुल्लड़ सुनके दौड़ी आयी और सबन का कान-फान उमेठी के कोठी मां लेई गयी ।"

"फिर ?"

"बोली, हीयां बैठि के रोजे पढ़ाई होवेगी । हम पढ़ावेंगे । बाद को सबै हमरे इसकूल मां भरती हो जाना । मुफ्त दाखला दिलवावे है । नांही तो, मालिक ते कहके सबन को अहाता मां से खदड़वावे है !"

"तो अच्छा है । पढ़-लिख लेंगे बच्चे ।"

"और काम-धाम ना सीखी ? पढ़-लिखकर कछु काम के ना रहिये ।"

"कोचवान साब नहीं पढ़ लेते ? तोता-मैना के रिसाले से लेकर मजहब तक की किताब पढ़ लेते हैं । हम भी चिट्ठी-पत्री बांच लेते हैं । हम क्या बिगड़ गये ?"

"तुम पढ़े, बूढ़ा होकर । ई अबहिन ते जो पढ़ी तो बस लाट हो जाई ।"

"छोड़ । ये बता, तेरा टिकट कब कटा लाऊं ?"

"हम का तोहार बाप का खात हई ?"

"चल बुआ, तुझे, आज लाला के बाजार का खोमचा खिला लाऊ।"

"सच ?"

"हा, दोपहरी में चलेंगे।"

"काहे पे बैठि के ?"

"मेरी पट्टी चढ़ के!"

"अच्छा भइया, पाव ते ही चले चलेंगे।" बुआ ने मन मसोसकर कहा।

आखिर बुआ के नाम किसी भूले-बिसरे रिश्तेदार का खत आ ही गया। वह सारे अहाते में कहती फिरी :

"हुआ हमका टेरत है, हमार बचवा। अब कित्तक दिना पड़ि रहि होयाँ ? हमका जावे का होई।"

गनपत झटपट बुआ को गाड़ी पर सवार करा आया। फिर अपना सदूकची-बिस्तर लाकर वापस कोठरी मे जमाने लगा। फौरन बड़ी बी ने टोका :

"अरे वहीं पड़ा रहता ना ?'

"हम क्या भूत हैं, जो इकले वहां पर पड़े रहेंगे ?" सबने बड़ी जान को आफत यह बड़ी बी ही डटी रह गयी— गनपत ने कुढ़कर सोचा। फिर पूछ ही लिया :

"और कब तक रहोगी, बड़ी बी ?"

"अब तो नौचदी की कुल्फी खाकर ही जाऊंगी।"

गनपत ने हजार बार समझाया, कि "बड़ी बी, जब कहो तब कुल्फी ही कुल्फी लाकर खिला दू। नौचदी की क्या खाक कुल्फी है !"

खातिर ? गांव नहीं जाओगी ?" गनपत ने पूछा ।

"अरे जाऊंगी ससुर, और दस दिनां मां । मेरी बात तो सुन ले, दाढ़ी-जार ।"

"सुना बुआ ।"

"छोटी कोठी की किरायदारन रही ना ? कृस्तान मास्टरनी ?"

"हां ।"

"ओ अहाता के सगरे बचवा पकड़ लीन्हे ।"

"क्या ?"

"परचा लुटाती सनीमा की गाड़ी आय रही । भीतर से बाजा बजता रहा । बचवा पिछाड़ी दौड़के परचा लूटन लागे । बस, हुल्लड़ सुनके दौड़ी आयी और सबन का कान-फान उमेठी के कोठी मां लेई गयी ।"

"फिर ?"

"बोली, हीयां बैठि के रोजे पढ़ाई होवेगी । हम पढ़ावेंगे । बाद को सबै हमरे इसकूल मां भरती हो जाना । मुफ्त दाखला दिलवावे है । नांही तो, मालिक ते कहके सबन को अहाता मां से खदड़वावे है !"

"तो अच्छा है । पढ़-लिख लेंगे बच्चे ।"

"और काम-धाम ना सीखी ? पढ़-लिखकर कछु काम के ना रहिये ।"

"कोचवान साब नहीं पढ़ लेते ? तोता-मैना के रिसाले से लेकर मजहब तक की किताब पढ़ लेते हैं । हम भी चिट्ठी-पत्री बांच लेते हैं । हम क्या बिगड़ गये ?"

"तुम पढ़े, बूढ़ा होकर । ई अबहिन ते जो पढ़ी तो बस लाट हो जाई ।"

"छोड़ । ये बता, तेरा टिकट कब कटा लाऊं ?"

"हम का तोहार बाप का खात हई ?"

"चल बुआ, तुझे, आज लाला के बाजार का खोमचा खिला लाऊ।"

"सच ?"

"हां, दोपहरी में चलेंगे।"

"काहे पे बैठि के ?"

"मेरी पद्दो चढ के !"

"अच्छा भइया, पाव ते ही चले चलेंगे।" बुआ ने मन मसोसकर कहा।

आखिर बुआ के नाम किसी भूले-बिसरे रिश्तेदार का खत आ ही गया। वह सारे अहाते में कहती फिरी

"हुआ हमका टेरत है, हमार बचवा। अब कित्तक दिना पडि रहि हीया ? हमका जावे का होई।"

गनपत झटपट बुआ को गाड़ी पर सवार करा आया। फिर अपना सदूकची-बिस्तर लाकर वापस कोठरी में जमाने लगा। फौरन बड़ी बी ने टोका :

"अरे वहीं पड़ा रहता ना ?'

"हम क्या भूत हैं, जो इकले वहां पर पड़े रहेंगे ?" सबसे बड़ी जान को आफत यह बड़ी बी ही डटी रह गयीं— गनपत ने कुढ़कर सोचा। फिर पूछ ही लिया :

"और कब तक रहोगी, बड़ी बी ?"

"अब तो नौचंदी की कुल्फी खाकर ही जाऊंगी।"

गनपत ने हजार बार समझाया, कि "बडी बी, जब कहो तब कुल्फी ही कुल्फी लाकर खिला दू। नौचदी की क्या खाक कुल्फी है !"

पर बड़ी बी को जाने कौन-से साल की नौचंदी की कुल्फी याद रह गई थी।

"अरे, दांत होते तो तिल-गुड़ की गजक की एक पट्टी भी खाती। तिल-बुग्गा तो जरूर ही खाती। अब तो मरी कुल्फी भी पिघला के खानी पड़ेगी। और हां, हमें एक मेरठ की कैंची भी खरीदकर ले जानी है। सबसे खरा माल तो नौचंदी में ही आकर भरेगा। यूं, शहर में कहीं से भी कैंची खरीद लो। यूं का क्या है।"

बड़ी बी कैंची और कुल्फी के लिए नौचंदी तक रुकी रहीं।

मूंगफली चावते चलते ही चलेंगे, मेला-भर में। हो…हो…हो…"

"अरे, हट ! हमारी दोनों जेबों में मेवा भरा है।"

"अरे, तुमने तो कोचवान जी, क्या गजव की लहर दे डाली अपने वालों में ? हमारा केस तो देसी घास-सा उगा है, साला।" जगेसर ने ज़रा उदासी से कहा। और वह घोड़ी को रंग-विरंगे दानों और कौड़ियों की झालरों से सजाने लगा। वोला :

"अरे, हमारी 'वीवी जान' तो, यह देखो, दुल्हिन वन के जा रही है, मेले में।"

रहमतुल्ला ने भी प्यार से घोड़ी की पीठ थपथपा दी।

"मालिक को कहां छोड़ आये रहमत ?" गनपत ने पूछा।

"वही, मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक। डाक्टर साहव को लेकर क्लव। वही मालिक को अपनी मोटर से यहां छोड़ जायेंगे।"

"ले, अपना लाव-लश्कर भी आ लिया।" गनपत ने जनाना सवारियों और वच्चों को भीतर से आते देखकर कहा। सवसे आगे नन्हे ही दौड़ा चला आ रहा था। सर पर कमख्वाव की टोपी। वदन पर धूप-छांव वाले पीले रेशम की अचकन। पर, नीचे से नंग -धडग। क्योंकि उसकी पजामी वड़ी वी ने तहाकर अपनी थैली में रख ली थी। वोलीं :

"निगोड़ा अभी से गीली कर देगा।"

"नूरी वेगम से और कुछ हो न हो, कुनवे के सुरमा वड़े जी से हालती है। लौंडे का सुरमा तो कान तक खिंचा है। सुरमेदानी साथ भी रख ली या नहीं ?" गनपत ने नूरी से पूछा। जवाव मिला वड़ी वी से :

"तुम्हें समझदारी से कतई लगाव नहीं है, मियां ? भला औरतों से मजाक किया जाता है ?"

नूरी का नया लौंडा कुर्ते की जरी की चुभन से विलख रहा था।

वह उसे छाती में भींचे ले रही थी।

"मुझे दे इसे। घोंट ही देगी क्या? थोड़ी सी राह तो मैं बाएं हाथ से ही थाम लूं।" रहमतुल्ला ने छुन्नू को ले लिया।

बन्नो अपनी रेशमी सुत्थन से झाड़ू लगाती चली आ रही थी। सवा दो गज़ी फिरोज़ी नाड़ा नेफे में से अलग लटक रहा था।

"अरे इसकी सुत्थन इतनी लंबी काहे सिला दी?" गनपत ने पूछा।

"ईद वाली तो है।" नूरी ने कहा।

"चलो इस साल बड़ी की उतरन लग रही है, अगले साल छोटी की झपटी हुई लगेगी।" गनपत ने कहा।

"बस, तुम खड़े नुक्स निकाला करो। चलो हटो, अगली रेल में आना।" बड़ी बी कुड़कुड़ाई।

"आ जाऊंगा, अगली रेल में। पर अगर नौकरी के मुन्शी तुम्हें उठा ले गए, तो फिर मुझे याद न करना। और यह मुर्गे का [illegible] भी लिए लो।" गनपत ने जवाब दिया।

"मुआ-मुर्दार! बड़ी-बूढ़ियों को भी नहीं छोड़ता। मगर हमारी कमान हो चली पर ऐसा बेहया ना देखा।"

रतनो भी बच्चों समेत पहुंच गई। उनकी साड़ी का किनारा तो दूर से ही चमकारा मार रहा था।

"ला छुटका मुझे पकड़ा दे।" गनपत ने रतनो से बच्चा ले लिया और कोचवान के साथ जाकर ऊंची सीट पर बैठ गया। चुन्नी बच्चों के साथ टमटम के पायताने जा बैठी। बाकी सवारियां दूसरी गाड़ी में बैठ गए। गनपत ने कोठी की रखवाली के लिए ऊदा और अमरसिंह को बुला लिया था। उसको उन्हें सख्त हिदायत थी कि चाहे सारी रात बैठे जागें, वे दोनों तब तक अपने घर न जाएं जब तक गनपत ही न लौट आए।

"अरी, वेगम-महल की वेगम, मेरे लिए क्या लाओगी मेले से?" छत्रो ने चलते-चलते बड़ी बी को हांक लगाई।

"लाऊंगी, मालकिन, बम्बई की झाड़ू लाऊंगी तेरे लिए।" बड़ी बी नन्हे को गोदी में सम्भाले बोलीं।

"ले चलो रहमत भाई, ज़रा दुलकी की चाल में।" गनपत ने मज़े में आकर कहा। घोड़ी दुलकने लगी।

"छुट्टन तो हवा खाके सो गया।" रहमतुल्ला ने लाड़ से लौंडे को ताककर कहा।

"रतनी वाला भी ऊंघने लगा। तुम्हें पता है बाहर के शहर से सेठों के कितने खेमे गड़े हैं इस बार?"

"कोई बतला रहा था, आठ तंबू गड़े हैं, साहूकारों के। और चार-एक अपने शहर के हुक्मरानों के हैं।"

"अंबाले से ननकू पहलवान आया है इस बार नौचंदी में?"

"उसका अखाड़ा तो सबसे अव्वल गड़ा था। दो दंगल तो हो भी लिए।"

"रहने दो भाई, दुलकी की चाल में। मज़े की चाल है। सुना है, आगरे की गुलाब जान भी नाचेगी......आधी रात बाद......पर्देदार तंबू में? भारी टिकट रहेगा शायद?"

"बाज़ार में सुना तो मैंने भी था। यों ऐन वक्त पे ज़ुकाम हो जाए तो अल्लाह जाने।"

"इन औरतों को निबटाकर हम-तुम चले चलेंगे ज़रा। देखें कैसे नाचती है।" गनपत ने कहा।

"सुना है, दरबार-हाल का पूरा चबूतरा, बैठे ही बैठे घूम जाती है।"

"अच्छा? बैठे ही बैठे?"

"हां। एक पांव की घूंघर बजाके!"

"सच ? तुम तो रहमत भाई, बाजार में सब मुल आते होगे। ना " ना " · कोई हरज थोड़े है। तभी तो पूछ रहा हू। अच्छा, रहमत भाई, लाल घाघरा पहने रहती होंगी ?"

"उहू ! सब्ज ।"

"ज़री वाला ?"

"पूरा जालदार।"

"अरे भाई रहमत ! सरपट दौड़ा दे जरा बीबी जान को।

"ले चल, बीबी जान, दिखा दे अपनी चाल। हा, ज़रा बचाके मेरी जान ! शाबाश ! मेरे बाग की गुलदुम !"

इशारों मे बात समझने वाली घोड़ी को जो एड लगी तो वह हवा से बाते करने लगी। पायताने पर बैठा जगेसर छुटकी को थामे उछलने लगा। फिर लगा, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने।

रहमतुल्ला ने चाल धीमी करने को रास खींची। बीबी जान को अपनी रफ्तार यों तोड़ना पसन्द न आया। वह ज़ोर से हिनहिनाकर बिदकी। फिर, खिदमतगार के हाथ की लाज रखकर धीमी पड़ गई।

"करवा दी न पैर-घिस्सू चाल इस घसियारे ने !" गनपत ने अधीरता से कहा।

नौचन्दी पहुचने तक जगेसर चिल्लाता ही रहा :

"मार ही दोगे क्या सालो घोड़ी को ? ऐसी जवानी चढ़ी है, तो दौड काहे नाही लगाते, सडक पे ?"

नौचन्दी ग्राउण्ड पर पहुचते-पहुचते रहमतुल्ला घोड़ी को शाही चाल मे ले आया था, रईसाना अन्दाज़ मे धीमे-धीमे। टमटम थमते ही मालूम पड़ा कि अन्दर, बड़ी बी भी तब से ही चीख रही थी। घोड़ी की बिजली की चाल होते ही उनका हाजमा भी बिगड़ गया था।

"ज़रूर इस सांड, गनपते ने एड़ लगवायी होगी ! हमारी तो सारी पसलियां ही उलझकर रह गयीं। कमवख़्त-वदवख़्त, घर पर ही क्यों ना रह गया ?"

"अरे चलो, वड़ी वी, नखरा छोड़ो। वड़ी नाज़ों की पली हो। हमें भी पता है, वड़े मियां तो तुम्हें कभी फूलों की छड़ी भी न छुलाते थे।" गनपत ने जले पर नमक छिड़का।

"अय, तो अपने मियां ने दो हाथ छोड़ ही दिये, गाहे-वगाहे, तो हम क्या वेजान चीज़ हो गये, जो झुनझुने की तरह वजा दिया हमें !"

"अम्मी, नन्हे की पजामी किधर गयी ?" रहमतुल्ला ने याद कराया।

"पहनाऊं हूं, मुत्ती तो करा ले पैले इसे। पजामी कहीं भागी जा रही है ?" वड़ी वी झींकीं।

रहमतुल्ला ने वच्चे को नूरी को पकड़ा दिया और दूसरी खेप ले आने को चला गया। सव आ गए तो ऐसे ही, वकते-झींकते उनका जुलूस नौचन्दी की जगर-मगर के वीच इससे टकराता, उससे उलझता चलता चला।

वड़ी वी तमाम नौचंदी में सदर की कैंची खोजती फिरीं।

"अरे, ले लेंगे, कैंची भी। तुम्हें किसीकी जेव कतरनी है, जो ऐसी जल्दी मची है ?" गनपत ने आजिज़ी से कहा। पर, कैंची ले ली गई।

वड़ी वी की कुल्फी भी खासी महंगी पड़ी। नाम उनका, और खाई पूरे कवीले ने। जिसमें वच्चों ने तो वहाई ज़ियादा और खाई कम।

नूरी वेगम की नाक का नग निकलकर गिर पड़ा। कुछ देर उसे भी टटोलना पड़ा। वन्नो की सुत्थन का पायंचा डेरे के कीले में फंस गया। वह फटकर ही छूटा। आधा घण्टे तक वह अलग विसूरती रही। उसे पिंजरे समेत तोता दिलवाया तव जाकर उसका पिनपिनाना थमा।

गुदड़ी बाज़ार की रेवड़ी-गजक की मशहूर दुकान भी लग चुकी थी, सो बाकी के बच्चे तिलबुग्गे के लिए मचल गए।

"रहमत भाई, याद है न ? अपन अलहदा से आएंगे।" गनपत ने परेशान होकर कहा।

दो रोज़ पीछे, गनपत और रहमतुल्ला नौचंदी को मर्दाना बानगी से देखने निकले।

"पैदल ही चले चलेंगे।" गनपत ने अपने तेल-चुपड़े बालों में बुलबुले बैठाते हुए कहा। रहमतुल्ला ने कलफ लगे चिकन के कुर्ते के ऊपर के दो बटन खुले रहने दिए। फिर गिरेबान को मोड़ दिया, तिकोना-सा। कुर्ते की चुन्नट डली बाहों को परखने लगा।

"चुन्नट तो सेवइयों-सी तोड़कर रख दी है, अपने रामा धोबी ने।"

फिर गुलाब के इत्र को फुरेल को कान के पीछे रख, रहमतुल्ला कलाई पर लाल रेशमी रूमाल बांधने लगा।

गनपत मालिक की उतरन में मिली पतलून पर पेटी कसने लगा।

"अब पेटी क्या कस रहा है ? पतलून तो तेरी गुम्बद पे पहले ही गड़ी पड़ी है। छिलके की तरह छीलकर तो उतारनी पड़ेगी और तू सोच रहा होगा कहीं खिसक ना ले ?" रहमतुल्ला ने चुटकी ली। इतने में बन-फुलवा और जगेसर भी आ गए। गनपत ने उन्हें भी चलने के लिए कहा तो रहमतुल्ला बोल पड़ा :

"अरे ये क्या जायेंगे, जोरू के गुलाम। इनकी औरतें, अकेले जाने देंगी ? कल रात का किस्सा सुनाऊं क्या तुम्हें ?"

"अच्छा ? कल रात कोई किस्सा हो गया क्या ?" गनपत ने उत्सुकता दिखाई।

"अरे, आधी रात में ये वनफुलवा बाहर लंबी तान के सोया था, और अन्दर इसकी औरत कंगन पर कंगन रखकर खनका रही थी। पर इस बौड़म पर कोई असर नहीं। उधर जगेसर ने सोचा कि इसके वाली ही इशारा दे रही होगी। तो ये साहब उठकर अन्दर को तीर हो लिये।"

"अरे चुप! कोचवान भाई, तुम भी कमाल कर देते हो।"

जगेसर जितना झेंप गया, उतना ही गनपत भी गुलाबी पड़ गया। वनफुलवा 'हो-हो' करके हंसने लगा।

हंसी सुनकर बड़ी बी भी पहुंच गईं। अपने बेटे का ठाट-बाट देखा तो, सदका उतारने लगीं। पर, गनपत को लेकर टोक दिया :

"तुम्हारी भी कोई हद है, मियां? बिने बारात के नौशा बने रहते हो हरदम।"

"भीतर जाओ, बड़ी बी। नाहक मर्दों के बीच में न पड़ा करो। रहमते, जल्दी कर ले भाई, कहीं लोग मिज़ाज ही न उखाड़ के रख दें।" गनपत ने फिर चलने की जल्दी मचा दी।

दरबार हाल का तंबू गुलाब जान की प्रतीक्षा में दम साधे था। रहमतुल्ला और गनपत सवा दो रुपये वाली सीट पर जमकर बैठ गए। साज़िंदे साज़ों को कसते-ठोकते रहे। एक मुद्दत के बाद गुलाब जान मंच पर तशरीफ लाई। तान छेड़ी गई :

उसने घूम के जो मारा नज़्ज़ारा हमें……।

गुलाब जान थिरकने लगीं। बैठकर चक्कर लेती गुलाब जान ने इस ज़ोर से एक गुलाब की कली शैदाइयों की तरफ उछाली कि वह गनपत की ही गोद में आन गिरी। वह पसीना-पसीना हो गया। पड़ोसी भी उछल पड़े। रहमतुल्ला ने गनपत के कोहनी से धक्का मारकर छेड़ा, "क्यों मियां, आज तो सवा दो रुपये में जन्नत लूट ली!"

तबू से बाहर निकले तो गनपत गाज-मारा-सा चलने लगा।

"क्यो मियां, अभी से बहकने लगे ? अभी तुमने देखा ही क्या है। चलो तुम्हें नौचन्दी दिखलाने का सेहरा हमारे सर ही सही।"

"इससे पहले भी आया हू, भाई। पर तुम्हारे साथ इसकी और बात है। ऐसा नाच तो कभी देखा नहीं।"

"अरे, अब वो नाचने वालिया कहा रही ?"

"क्यो भाई ? उन्हें अब क्या हो गया ?"

"अरे अब वो आशिक ही नही रहे, वो कद्रदान ही नही रहे।"

"कैसा दान, भाई ?"

"तुम नही समझोगे, यार। तुम्हारी अकल के करीब तो बस पीकदान और कलमदान ही है।"

'कलमदान' सुनकर अचानक गनपत को मालिक की याद हो आई। उसकी अन्तरात्मा उसे कचोटने लगी।

"यार रहमत, आज मालिक के बायें कन्धे में दर्द उठ आया था। मैं जरा मालिश करके सुला तो आया पर जो ज्यादे जोर का हो गया तो किस-से कहवेंगे भला ?"

"अरे, यार, तू तो हैरवा-सा करने लगा है। चल तुझे बन्नूजी और लल्लूजी की बदा-बदी की कव्वालिया सुनवा के लाऊ।'

"बदा-बदी की कव्वाली ?"

"हा, शर्त बद-बद के सुनने जाते है लोग कि देखें किसकी टोली जीतेगी।"

दोनो यार कव्वाली के मेले में अलमस्त हो गए।

वहा से निकले तो रहमतुल्ला बोला :

"यार, खूब याद आया, वो जरा चल उस तरफ भी चलें—दुकानों की

तरफ। खुदा जाने कौन-सी दुकान ठीक रहेगी, दस्तबन्द के लिए ?"

"दवाई का नाम क्या है ?" गनपत ने पूछा।

"दवाई ?"

'कह नहीं रहे हो कि दस्तबन्द के लिए चाहिए ?"

"हा···हा···हा ! अरे खुदा बचाए तुझसे। यार···दस्तबन्द औरतों की कलाई का ज़ेवर होता है। दुनिया में हर औरत दस्तबन्द मांगती है, कोई पहले, तो कोई ज़रा देर से।"

"ले लो भाई, जैसे भी बन्द हों। नहीं तो नूरी तुम्हें घर में नहीं घुसने देगी। उन दोनों को तो जोरू का गुलाम बता के आये हो, और खुद घूस देके निकले हो ! मैं तो कुंवारा ही भला।"

चांदी के गहनों की दुकान पर दुकानदार हाथ में उठा-उठाकर तरह-तरह के आकर्षक ज़ेवर दिखलाने लगा। एक तो नाच-रंग का प्रभाव, उस-पर कव्वालियों के असरदार बोलों की गूंज, तिसपर यह ढेर ज़नाना ज़ेवरात का। गनपत को जाने क्या हुआ कि, जो भी ज़ेवर सामने झूलता दिखलाई दे, उसीके पीछे से रतनी के उठे-उठे, गेहुआं नयन-नक्श झांकने लगे। कभी सिंगार-पट्टी के नीचे से उसकी दो आम की फांक-सी लम्बी आंखें कोरों को फड़का दें। कभी मांग के टीके की झालर के नीचे उसका माथा दमक जाए। दुकानदार तिमंज़िले बुन्दों को जब गनपत की आंख के सामने झुलाने लगा तो उसने हाथ बढ़ाके उन्हें थाम लिया :

"कितने के हैं ?" उसने दबी आवाज़ में पूछ लिया।

"हैं ? किसके लिए, दोस्त ?" रहमतुल्ला चकराया।

"अरे वो हमारी शर्त बद गई थी एक रोज़ रतनी से ही। हमने कह दिया कि तेरे चौथी भी लौंडिया ही होगी। बस, वह ज़िद पर चढ़ गई कि जो लौंडा हो गया तो ? बस शर्त लग गयी। चलो निबटा दें इस काम को

भी, नहीं तो जिनगी-भर हमें बानिया पुकारेगी।" गनपत ने बात बनाई और बुंदे खरीद डाले।

रात बहुत हो गई थी। दोनों दोस्त लौटकर चुपचाप अपनी-अपनी जगह पर पड़ गए।

अगले दिन रतनी अलसाई-सी उठी अंगड़ाई तोड़ ही रही थी कि गनपत ने डिबिया उनके सामने ला पटकी। जगेसर और बच्चे सब वहीं थे।

"ले रतनी! तेरे आखिर लौंडा हो ही गया। हमने भी तुझसे शर्त बदी थी सो ला दिए। ठोस चांदी के है।" बड़की ने झट से उठाकर डिबिया खोल डाली। लाल-लाल मोतियों की लटकन वाले बुन्दे देखकर किलकारी मारकर चिहुंक उठी, "हाय, अम्मा री! कैसे सलोने हैं!" रतनी सोचती रह गई कि शर्त-वर्त तो कोई ऐसी बदी नहीं थी। फिर, उसने मुस्कराकर कानों में से पुरानी बाली उतार फेंकी और नये बुंदे पहन लिए। दायें कान का बुन्दा झल-झल करके झमकने लगा। बाया कान तो सिर के पल्ले में छिप गया। 'बाप रे, इसीको कहते है, दुनिया मे ठगाई। राम जी को भी जाने क्या पड़ी थी, जो इस औरत के मुखड़े पर इत्ता सारा खट्टा-मीठा रस उंडेल दिया।' गनपत ने मन ही मन सोचा।

# टाल की आग

अहाते के बच्चे छोटी कोठी के बरामदे में बैठे पढ़ रहे थे। रोज़ी ने उन्हें कुछ ही रोज में ऐसा साध लिया था कि अब उन्हें किताबों की तस्वीरें ही नहीं उनके हरूफ भी समझ आने लगे थे। रोज़ी का पति, टॉमस अंदर आराम कर रहा था। दोनों मिशनरी स्कूल में पढ़ाकर आ चुके थे। पहले तो बच्चों को काबू करने के लिए पति-पत्नी दोनों की ज़रूरत पड़ जाती थी पर अब नकेल डल चुकी थी और रोज़ी उन्हें अकेले ही भुगत लेती। जिस रोज़ बच्चे अधिक योग्य साबित होते, उस रोज़ उन्हें घर के बने केक के टुकड़े भी नसीब हो जाते।

दोपहर का समय था। गनपत नीम तले पड़ा ऊंघ रहा था। अचानक शोर उठ गया।

"अरे दौड़ियो रे! ओ बनफुलवा! अरे ओ रे गनपतवा!" छत्रो हाक पर हाक लगाने लगी।

गनपत उछलके उठ पड़ा। अहाते के बच्चे और मास्टर जोड़ा भी बाहर निकल आए।

"क्या हुआ?" गनपत चिल्लाया।

"अरे, कोठी की बगल में, टाल में आग लग गयी! बुझाए ना बुझती!" छत्रो चीखी।

"अरे चलो! सब चलके हाथ लगाओ! कहीं कोठी की भीत ही गरमाकर न ढह जाए।" गनपत ने अहाते की औरतों को बाहर निकाला।

"और कहीं जो इधर को आ गयी तो कहीं मालिक के कागज-पत्तर और पोथी-पत्तर भी न जल के खाक हो जाए!" छत्रो ने घबराकर कहा।

गनपत भीतर दौड़ा। रसोई के कपाट खोले तो देखा, टाल में मढ़ी खुली खिड़की में से आग की ललचाई लपट भीतर लपक आई है। पर उसके दायरे में डसने लायक जब कुछ नहीं मिला तो वापस लौट गई। गनपत ने झपककर खिड़की बंद कर दी। बाल्टी भर-भर पानी दीवार-किवाड़ पर उलीचने लगा।

"अरे अगना वाली भीत पे पानी डालो।" छत्रो बाहर से ही चिल्लाई। चंपी, रतनी, बच्चे और यहां तक कि बुर्का ओढ़े नूरो भी भगौने-पतीले भर-भर कर दीवारों पर पानी डालने लगे। ये दीवारें टाल से मढ़ी थीं और वाकई गर्मा गई थीं। भीत गीली रहेगी तो आग से नुकसान नहीं पहुंचेगा। बस, यही बात उन सबके दिलों में घर कर गई थी।

अग्नि-शमन दस्तों की दहशतजदा-सी टन्-टन् भी सुनाई पड़ी। टाल

में सूखे लक्कड़, वल्लम के ढेर लदे थे। अग्नि को इतना ढर-सा कलेवा शायद ही कभी मिला हो। वह लप्-लप् करती सब ओर अपनी जिह्वा फिरा रही थी। धू-धू, धक्-धक्—भयंकर लपटें आकाश छू रही थीं।

"हे राम! ई तो हमार पेड़न के भी चाट जाई।"

बनफुलवा टाल का दृश्य जो देखकर आया, तो उसके तो प्राण ही सूख गए। वह पिछवाड़े की खेती में बनी हौदी से पानी भर-भर सब तरफ बखेरने लगा। जहां तक गीला रहे वहीं तक भला। ट्यूब लगाकर पेड़ों को लथपथ कर छोड़ा।

गनपत ने मालकिन के कमरे खोल डाले। छोटे कमरे टाल से सटे थे। स्टोर की खिड़की पकड़ी गई थी।

"अरी रतनी!चंपी! इधर आओ।" वह चीखा।

दोनों औरतें अंदर भागी आईं। लौ कुछ कमज़ोर थी सो चार बाल्टियों में ही शान्त पड़ गई। स्टोर में रखे बक्सों में, रुपये-धेले से आंको तो कीमती कुछ भी नहीं। यह गनपत जानता था। क्योंकि मालकिन का दामी कपड़ा और भारी गहना खुद मालिक अपने हाथ से डॉक्टर साहब की बहुओं में बांट आए थे। एक संदूक में पांच मृत मुन्ने-मुन्नियों के नन्हे-नन्हे जो कपड़े रखे हैं, बस, उन्हींसे जगती आस गनपत के मन में मरती नहीं थी। जाने कब मालिक फिर से ब्याह……

एक संदूक में मालकिन की तस्वीरें थीं, जो मालिक ने दीवारों पर से उतरवा दी थीं। उन्हें सहन नहीं होती थीं। एक में बड़े पलंग का बिस्तर, चादरें, मेज़पोश वगैरह थे। कितनों पर तो मालकिन के हाथ के बेल-बूटे कढ़े थे। मालिक ने उन्हें अपने लिए फिर कभी बिछाने न दिया।

एक और भी संदूक था, जिसमें मालकिन की ढेरों कांच की चूड़ियां, पांव की बिछिया, चुटीले, रूमाल और श्रृंगार की चीज़ें बंद थीं। उन्हें गनपत

बाट नहीं पाया था। गनपत ने भगवान जी की मूरत के आगे सर नवाया। उसे लगा, मालिक की ओर से मालकिन को याद कर लेना भी उसीका कर्तव्य बन गया है। कुछ ऐसे नाजुक मिजाज आदमी बनाए हैं राम जी ने, कि लगता है गनपत अगर उन्हें एक बार इन कमरों में ले भी आया तो वे चरमराकर बिखर जाएंगे। गनपत ने भगवान जी के आगे जोत जगा दी और कमरे खुले रहने दिए।

शाम तक जाकर टाल की आग मदी पड़ी। सब कुछ भुननकर कोयले की खदान बन गया था। टाल वाला तो सकते में आ गया था। हजारों का नुकसान पड़ा था उसे। रोजी और टॉमस उसे दिलासा दे रहे थे। दोनों तब से यहीं पर मदद कर रहे थे।

मालिक लौटे तो गनपत और बनफुलवा के चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं। आग का हाल बतलाते-बतलाते दोनों ही भरभराकर रो दिए।

"ख़ैर हो गयी मालिक। कोठी बच गयी हुजूर। बराबर में तो चिताएं जल उठी थीं। जो वही हाल यहां भी हो जाता, मालिक, तो क्या होता?" गनपत बोला।

उन्हें, इतना सहमा-घबराया देख श्री किशोरचन्द्र भी कुछ सकपका गए। एक चक्कर टाल का लगा आए। टाल-मालिक को ढाढ़स बंधाया। लौटकर देखा बनफुलवा और गनपत अब भी चबूतरे पर खड़े रहमतुल्ला और जगेसर से सब हाल कह रहे थे और आंसू भी पोंछते जा रहे थे। मालिक ने जाकर दोनों का कंधा थपथपा दिया। कहा, "बहुत घबरा गए हो। अंदर जाकर कुछ खा-पी लो, और आराम करो। सब ठीक है।"

रहमतुल्ला और जगेसर, दोनों को अहाते में ले गए। वहां की औरतें नये सिरे से शुरु हो गईं। किसी तरह सबको सहला-बहलाकर हादसे के धक्के से बाहर किया। बड़ी बी का तो बोल ही न फूटा। बस, टुकुर-टुकुर

में सूखे लक्कड़, वल्लम के ढेर लदे थे। अग्नि को इतना ढर-सा कलेवा शायद ही कभी मिला हो। वह लप्-लप् करती सब ओर अपनी जिह्वा फिरा रही थी। धू-धू, धक्-धक्—भयंकर लपटें आकाश छू रही थीं।

"हे राम! ई तो हमार पेड़न के भी चाट जाई।"

वनफुलवा टाल का दृश्य जो देखकर आया, तो उसके तो प्राण ही सूख गए। वह पिछवाड़े की खेती में बनी हौदी से पानी भर-भर सब तरफ बखेरने लगा। जहां तक गीला रहे वहीं तक भला। ट्यूब लगाकर पेड़ों को लथपथ कर छोड़ा।

गनपत ने मालकिन के कमरे खोल डाले। छोटे कमरे टाल से सटे थे। स्टोर की खिड़की पकड़ी गई थी।

"अरी रतनी !चंपी ! इधर आओ।" वह चीखा।

दोनों औरतें अंदर भागी आईं। लौ कुछ कमज़ोर थी सो चार बाल्टियों में ही शान्त पड़ गई। स्टोर में रखे बक्सों में, रुपये-धेले से आंको तो कीमती कुछ भी नहीं। यह गनपत जानता था। क्योंकि मालकिन का दामी कपड़ा और भारी गहना खुद मालिक अपने हाथ से डॉक्टर साहब की बहुओं में बांट आए थे। एक संदूक में पांच मृत मुन्ने-मुन्नियों के नन्हे-नन्हे जो कपड़े रखे हैं, बस, उन्हींसे जगती आस गनपत के मन में मरती नहीं थी। जाने कब मालिक फिर से ब्याह……

एक संदूक में मालकिन की तस्वीरें थीं, जो मालिक ने दीवारों पर से उतरवा दी थीं। उन्हें सहन नहीं होती थीं। एक में बड़े पलंग का बिस्तर, चादरें, मेज़पोश वगैरह थे। कितनों पर तो मालकिन के हाथ के बेल-बूटे कढ़े थे। मालिक ने उन्हें अपने लिए फिर कभी बिछाने न दिया।

एक और भी संदूक था, जिसमें मालकिन की ढेरों कांच की चूड़ियां, पांव की बिछिया, चुटीले, रूमाल और शृंगार की चीज़ें बंद थीं। उन्हें गनपत

बाट नहीं पाया था। गनपत ने भगवान जी की मूरत के आगे सर नवाया। उसे लगा, मालिक की ओर में मालकिन को याद कर लेना भी उसीका कर्त्तव्य बन गया है। कुछ ऐसे नाजुक मिजाज आदमी बनाए हैं राम जी ने, कि लगता है गनपत अगर उन्हें एक बार इन कमरों में ले भी आया तो वे चरमराकर बिखर जाएंगे। गनपत ने भगवान जी के आगे जोत जला दी और कमरे खुले रहने दिए।

शाम तक जाकर टाल की आग मद्धी पड़ी। सब कुछ झुलनकर कोयले की खदान बन गया था। टाल वाला तो सकते में आ गया था। हजारों का नकसान पड़ा था उसे। रोज़ी और टॉमस उसे दिलासा दे रहे थे। दोनों तब से वहीं पर मदद कर रहे थे।

मालिक लौटे तो गनपत और बनफुलवा के चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं। आग का हाल बतलाते-बतलाते दोनों ही भरभराकर रो दिए।

"खैर हो गयी मालिक। कोठी बच गयी हुजूर। बराबर में तो चिताएं जल उठी थीं। जो वही हाल यहां भी हो जाता, मालिक, तो क्या होता?" गनपत बोला।

उन्हें, इतना सहमा-घबराया देख श्री किशोरचन्द्र भी कुछ सकपका गए। एक चक्कर टाल का लगा आए। टाल-मालिक को ढाढ़स बधाया। लौटकर देखा बनफुलवा और गनपत अब भी चबूतरे पर खड़े रहमतुल्ला और जगेसर से सब हाल कह रहे थे और आंसू भी पोंछते जा रहे थे। मालिक ने जाकर दोनों का कंधा थपथपा दिया। कहा, "बहुत घबरा गए हो। अंदर जाकर कुछ खा-पी लो, और आराम करो। सब ठीक है।"

रहमतुल्ला और जगेसर, दोनों को अहाते में ले गए। वहां की औरतें नये सिरे से शुरू हो गईं। किसी तरह सबको सहला-बहलाकर हादसे के धक्के से बाहर किया। बड़ी बी का तो बोल ही न फूटा। बस, टुकुर-टुकुर

ताका कीं।

पहली बार, अहाते वालों को इस सत्य की पैनी, तीव्र प्रतीति हुई कि
उनका संपूर्ण जीवन, जीवन का अर्थ, ज़मीं-आसमां, समस्त संसार—-यह
पीली कोठी है। इसके बाहर सब अनजाना है, वेगाना है। मालिक ही
उनकी धरती की नींव और आकाश की छत्रछाया हैं। मालिक उजड़े, तो वे
सब भी राह की धूल हैं। मालिक बसे-बने रहें तो वे सब भी हरे-भरे हैं।

# चबूतरे पर शाम

चबूतरे पर छिड़काव हो चुका था। वह तर-बतर था।

पीले गुलाब छोटे-छोटे चांद बनकर नतर पर टंके थे। नागचम्पा की शाखें भी गुलजार थीं। गनपत ने बेंत की आराम कुर्सियां, तिपाइयां और गोल मेज बाहर खींच दिए थे। डॉक्टर साहब आने ही वाले थे। रात का खाना भी मालिक के साथ था। गनपत ने आज बड़े उत्साह से सब काम किया था। चबूतरा धुलवाने पर छन्नो के साथ फकीरे को भी लगा दिया था। वह मशक से पानी डालता जाता और छन्नो सींक की झाड़ू से पटापट पानी सूतती जाती। चबूतरे का पत्थर चमक उठा था। उसके

डालना भूल गया।

चाय के बर्तन वापस समेट के जाने लगा, तब तक दोनों डॉक्टरी और वकालत पर चुटकुले-से सुनाने लगे थे। उन दोनों की हंसी भीतर खाने के कमरे तक पहुंच जाती तो गनपत दुगुनी उमंग से प्लेटें लगाने लगता।

आठ बजे दोनों ने खाना मांग लिया। गनपत ने डोंगों में सब कुछ सजा-कर मेज पर रख दिया। दोनों परम संतोष से धीरे-धीरे खाने लगे। इस समय बहुत धीरे से कम-कम बतियाते रहे।

गनपत जानता था, खाते समय मालिक लोग ज़ियादा चुहलबाज़ी और हंसी-मज़ाक नहीं करते थे। जिससे निवाला फंसकर कहीं ठुन्नू न आ जाए। यही तो पढ़े-लिखों की बात है। अहाते वाले तो बस मुंह में कौर दिए-दिए ही बोलने-हंसने का जोश दिखला देंगे। फिर ऐसे ज़ोर का ठुन्नू लगेगा कि आंख बाहर को आ लेगी। ये लोग तो खाते समय कोई भी ऐसी बात नहीं छेड़ते जिससे जोश आ जाए।

गनपत ने बड़ी बी की ज़िद भी पूरी कर दी थी। प्लेट में सजाकर चार खमीरी रोटियां भी मेज़ रख पर दी थीं। मालिक ने पूछा :

"यह क्या है, भई ?"

"जी, खमीरी आटे की, डोली की रोटियां हैं। बड़ी बी ने पकाई हैं।"

"कौन बड़ी बी ?"

"जी, रहमतुल्ला की मां आई हुई हैं।"

"ओ, अच्छा-अच्छा !"

दोनों दोस्तों ने एक-एक खमीरी रोटी उठा ली। चखी और तारीफ़ भी की। खाना चाहे कितना भी लज़ीज़ बना हो, दोनों खाते उतना ही नपा-तुला। मूंग की दाल हो तब भी ढाई फुलके और कोफ्ता-करी हो तब

साथ ही शाम भी धुली-धुली-सी लगने लगी थी। आकाश नीला-उजला-सा था। सामने बगीचे की हरियाली आंखों को ठंडक-सी दे रही थी।

इतने में डॉक्टर साहब की गाड़ी का हॉर्न भी सुनाई दे गया। मालिक खुद ही निकल आए और डॉक्टर साहब को चबूतरे पर लिवा ले गए। हाथ मिलाते ही दोनों मित्रों में बातचीत शुरू हो गई थी। गनपत को सब कुछ बहुत अच्छा लग रहा था। मालिक की तबीयत कितनी ठहरी हुई और खुश नज़र आ रही थी।

बस, ऐसे में ही तो गनपत मालिक की ओर से कुछ निश्चिन्त हो पाता है। मालिक को हमउम्र मिल जाता है तो गनपत ज़रा देर चैन की सांस ले लेता है। कान देकर उनके लतीफे भी सुना करता। कौन जाने कब डॉक्टर साहब मालिक को वह नेक सलाह दे बैठें ?

गनपत चाय की ट्रे रखने गया तो दोनों दोस्तों की बातों का रुख 'बिगड़े केसों' की ओर हो गया था। डॉक्टर साहब के पास आज चार केस बिगड़कर पहुंचे थे, जिससे वह कुछ भिन्नाए-से लगे। गनपत जानता है कि शहर के नामी-काबिल डॉक्टर मनोहरसिंह के हाथ में कितनी शफ़ा है। यह जानते हुए भी कुछ लोग मरीज़ को पहले किसी घोड़ा-डॉक्टर के पास ले जाते हैं। जब लेने के देने पड़ जाते हैं और मरीज़ को यमराज की पुकार साफ सुनाई देने लगती है तो भागेंगे अपने डॉक्टर साहब के पास।

आज मालिक भी अपना 'बिगड़ा केस' ले बैठे। कचहरी में बड़ी सूझ-बूझ से उन्हें एक बिगड़ा केस संभालना पड़ा था। गनपत सोचने लगा, बाप रे बाप। कैसी भयंकर ज़िम्मेदारी का काम है इन दोनों का। ज़रा-सी चूक हुई नहीं कि एक का बिगड़ा केस अर्थी पर जा पड़े और दूसरे का फांसी के तख़्ते पर लटक जाए। अब भूल-चूक तो हो ही सकती है।' गनपत से तो सैकड़ों दफे भाजी में दो-दो बार नमक छूट गया, या फिर बिल्कुल ही

डालना भूल गया।

चाय के बर्तन वापस समेट के जाने लगा, तब तक दोनों डॉक्टरी और वकालत पर चुटकुले-से सुनाने लगे थे। उन दोनों की हंसी भीतर खाने के कमरे तक पहुंच जाती तो गनपत दुगुनी उमंग से प्लेटें लगाने लगता।

आठ बजे दोनों ने खाना मांग लिया। गनपत ने डोंगों में सब कुछ सजाकर मेज पर रख दिया। दोनों परम संतोष से धीरे-धीरे खाने लगे। इस समय बहुत धीरे से कम-कम बतियाते रहे।

गनपत जानता था, खाते समय मालिक लोग जियादा चुहलबाजी और हंसी-मज़ाक नहीं करते थे। जिससे निवाला फंसकर कहीं हुतू न आ जाए। यही तो पढ़े-लिखों की बात है। अहाते वाले तो बस मुंह में कौर दिए-दिए ही बोलने-हंसने का जोश दिखला देंगे। फिर ऐसे ज़ोर का हुतू लगेगा कि आंख बाहर को आ लेगी। ये लोग तो खाते समय कोई भी ऐसी बात नहीं छेड़ते जिससे जोश आ जाए।

गनपत ने बड़ी बी की ज़िद भी पूरी कर दी थी। प्लेट में सजाकर चार खमीरी रोटियां भी मेज़ पर रख दी थीं। मालिक ने पूछा :

"यह क्या है, भई?"

"जी, खमीरी आटे की, डोली की रोटियां हैं। बड़ी बी ने पकाई हैं।"

"कौन बड़ी बी?"

"जी, रहमतुल्ला की मां आई हुई हैं।"

"ओ, अच्छा-अच्छा!"

दोनों दोस्तों ने एक-एक खमीरी रोटी उठा ली। चखी और तारीफ भी की। खाना चाहे कितना भी लज़ीज़ बना हो, दोनों खाते उतना ही नपा-तुला। मूंग की दाल हो तब भी ढाई फुलके और कोफ्ता-करी हो तब

भी ढाई। गनपत ने सोचा, अहाते वालों की तरह नहीं कि तर माल मिल गया तो जड़ों तक सब उंगलियां तरी में डूबी रहीं। डकार पर डकार आती रहे और रोटी पर रोटी रख-रखकर तोड़ते रहे, जैसे कल तो खाने को मिलेगा ही नहीं।

और दिन तो कॉफी हाल में मंगा लेते थे, अकेले हुए तो फिर लाइब्रेरी में ही मंगा ली, पर आज मालिक बोले :

"बहुत ख़ुशगवार शाम है। चलिए, मनोहरसिंह जी, चबूतरे पर ही चलकर बैठते हैं। गनपत, कॉफी वहीं ले आओ।"

गनपत कॉफी बनाकर ट्रे बाहर ले गया तो मालिक बोले :

"गनपत, ज़रा हमारी लाइब्रेरी का लैम्प यहां रखकर जला दो।"

डोर तो थी ही गजों-गज लम्बी। सो गनपत ने लैम्प लाकर जला दिया।

कैसी प्यारी रात पड़ी थी, जैसे किसी महाराजा ने थालों मोती लुटा दिए हों। गगन जगमग-जगमग कर रहा था।

मालिक उठे और लाइब्रेरी से जाकर एक छोटी-सी किताब उठा लाए। हल्की-फुल्की-सी नन्ही किताब। उसमें से कुछ पढ़कर डॉक्टर साहब को सुनाने लगे। अंग्रेज़ी के शब्द थे, पर क्या शब्द थे, मानो मालिक के कंठ से कोई झरना फूट पड़ा हो। डॉक्टर साहब झूम-से उठे। फिर उन्होंने भी मुंहज़बानी कुछ याद-सा करते हुए सुनाया। शब्द वही अंग्रेज़ी के पर जैसे—कोई नदी कल-कल-छल-छल बहने लगे।

"बहुत खूब!" धीरे से मालिक ने दाद दी।

जैसे, अपने-आपसे ही कुछ कहा हो। मालिक फिर उस छोटी-सी जादुई किताब में से पढ़कर सुनाने लगे। रहमतुल्ला कल के लिए हुक्म सुनने चबूतरे की तरफ आने लगा तो गनपत ने उसे इशारे से वहीं रोक

दिया। उसे लगा यह वक्त बहुत कीमती है। इस समय का तिलिस्म टूटना नहीं चाहिए।

उस छोटी-सी किताब पर तो गनपत को मोह हो आया। कैसा विभोर कर दिया मालिक को। डॉक्टर साहब का जी भी तो भरमा लिया। कानूनी पोथियां वाचते वक्त तो मालिक बहुत गंभीर रहा करते।

आदत के खिलाफ दोनों दोस्त बारह बजे तक चबूतरे पर जमे रहे। बड़े हॉल का घण्टा जब बारह बार चोट कर गया, तब डॉक्टर साहब एकदम से खड़े हो गए। बोले :

"अब चलेंगे। तुम भी आराम करो, किशोरचन्द्र। थके होगे। गुड नाइट।"

फिर मोटर में बैठकर आवाज़ दी :

"भई, कल क्लब नहीं जाएंगे।"

"अच्छा। गुड नाइट।" मालिक ने कहा।

गनपत कोठी बन्द करके नीम तले जाकर पड़ गया। नहीं, मालिक आज उसे उतना अकेले नहीं लगे। गनपत उस रात खूब गहरी नींद सोया। न कोई सपना आया न जाग पड़ी। इतने इतमीनान से सोया जैसे संसार का वही सबसे निश्चित व्यक्ति हो।

सवेरे दतौन-हाजत से निबटकर गनपत सुबह की चाय लिए मालिक के शयन-कक्ष में पहुंचा। पलंग पर मसहरी अच्छी तरह घुसी थी। तीनों तरफ से तो तनी ही थी, बस एक खूंट पर ज़रा ढीली थी। रात में उठे होंगे, तो ठीक से खोंस नहीं पाए। यही सोचा गनपत ने। रात देर तक जागे थे, इसीसे अभी तक पलक झपी है। मसहरी के भीतर मालिक का प्रशांत, दयामय चेहरा देवतुल्य लग रहा था। भोला, सुंदर चेहरा।

बच्चे के मुख जैसा निष्कलुष और कपटहीन।

गनपत ने ठिठककर मालिक को देखा, फिर आगे बढ़कर ट्रे मेज़ पर रखने लगा। पांव गलीचे पर पड़े तकिये में धंस गया। अरे, यह नीचे जा पड़ा ? ऐसा तो मालिक नींद में कभी हड़बड़ाए नहीं। बड़े सलीके से, साफ-सुथरे ढंग से सोने वालों में से हैं। पायताने की मसहरी का जो कोना उढ़का रह गया, वहीं से तकिया नीचे जा पड़ा। पर पायताने तक तो तकिया कभी……?"

बिजली की-सी गति से, गनपत ने मसहरी का सिरा उखाड़कर मालिक का तन छुआ। वह बर्फ की गार-सा जमा था।

"नहीं मालिक ! नहीं……! "

गनपत ने मालिक की नब्ज़ टटोली, कोई हरकत नहीं।

जल्दी से सीने पर कान दाबकर सुनना चाहा, कुछ सुनाई नहीं पड़ा। पलक उलटकर देखी, फिर बेसाख्ता चीखता हुआ अहाते की ओर भागा।

"रहमत ! रहमत भाई……टमटम दौड़ाके ले जाओ, डॉक्टर साहब की कोठी पर। मालिक हिलते-डुलते नहीं। जल्दी करो भाई, हमें बहुत डर लग रहा है।"

गनपत ने फिर तेल मलकर मालिक के तलवे सहलाए।

जब तक डॉक्टर साहब पहुंचे, भीड़ जमा हो चुकी थी। गनपत मालिक के पांव मलता हिचकियां बांधकर रो पड़ा था।

डाक्टर साहब ने देखते ही अपने दिल पर हाथ रख लिया। फिर फुर्ती से जांच करने लगे। कुछ ही देर बाद वह सीधे होकर बैठ गए, चुपचाप।

कई जोड़ी आंखें याचना-सी करती उनके मुख पर जा टिकीं।

"सवेरे चार बजे के आसपास हार्ट-फेल हुआ होगा। इन्होंने कभी मुझसे कुछ कहा ही नहीं ……कोई शिकायत नहीं की।"

लगा, डॉक्टर साहब जैसे, इस वक्त भी मालिक से ही बोल रहे हों।

बड़ी बी ने बुर्के का पल्ला हटाया और पहली बार पीली कोठी के मालिक का मुंह देखा।

*"अल्लाह इन्हें जन्नत बख्शे। इनकी रूह को चैनो-अमन दे।"* वह धीरे से बुदबुदाई।

शाम तक मालिक के खोए-छिपे नाते-रिश्तेदारों का एक कुनबा आकर जमा हो गया।

सबके साथ जाकर गनपत मालिक को चिता पर लिटा आया था।

"रहमत भाई यह मौत ही, समुरी, दुनिया में सबसे बड़ी ठगिनी है। कैसे विश्वासघातिन की भांति मालिक को चुपके से उठा ले गई। और हम पड़े सोते रहे।"

"जैसे मुजरिम अपनी सज़ा को सुनकर सह जाता है वैसे ही मालिक की मौत को सह जाओ, गनपत।" रहमतुल्ला ने कहा।

ईसाई मास्टर जोड़े ने गनपत को ढाढ़स बंधाया

"रोओ मत, गनपत। तुम्हारे मालिक का मिशन इस दुनिया में खत्म हो गया तो वह उस पाक-परवरदिगार के पास चले गए हैं। नेक आदमियों की वहां भी ज़रूरत पड़ती है, भाई।"

लाइब्रेरी की बड़ी मेज़ पर वह छोटी-सी जादुई किताब खुली हुई औंधी रखी थी। गनपत ने धीरे से उठाकर वह डॉक्टर साहब को थमा दी। उनकी नज़र एक बार खुले हुए पन्ने पर गई। फिर, उन्होंने लतर से एक पीला गुलाब तोड़कर किताब के बीच दबा दिया और किताब अपने कोट की जेब में रख ली।

गनपत ने सुना, मालिक की एक रिश्तेदार औरत ने डॉक्टर साहब से पूछा :

"वह मनहूस आदमी कौन है, जो कोठी के कोने-कोने में रोता फिर रहा है ?"

डॉक्टर साहब ने तल्खी से जवाब दिया :

"वह मनहूस आदमी किशोरचन्द्र का बीस बरस पुराना नौकर है, बस, और कुछ नहीं।"

बड़े हॉल में साफ़-सफाई करते समय गनपत ने रहमतुल्ला के साथ मिलकर बड़ी दरी बिछाते हुए कहा :

"भाई, लगता है कि सवेरा हो गया। कैसी मनहूसियत-सी छायी है !"

"हां भाई। मकबरों में सवेरा नहीं हुआ करता।"

"कोठी तो, रहमत, मानो विधवा हो गई है।" गनपत बोला।

"बड़ी बी सुबह का चिराग तो तुम थीं, और चले गए मालिक ?" गनपत ने आधे मन से उलाहना दे दिया।

"हां, बेटा, कब्र में पांव लटकाकर तो बैठी हूं। जब उसका फरमान आ जाएगा, उठ जाऊंगी।" बड़ी बी ने दुपट्टे से आंसू पोंछते हुए कहा।

गनपत बड़ी बी के घुटनों में सर देकर रो पड़ा। बड़ी बी का हाथ धीरे से उसका माथा सहलाने लगा।

छत्रो अहाता साफ करने आई, तो झाड़ू पटककर वहीं बैठ गई, बोली :

"अब तो बड़ी बी, तुम यहीं रह जाओ, कोचवान जी के धोरे। वहां गाम में का धरा है ?"

"कहीं भी रह जाऊंगी, छत्रो, जहां सींग समाएंगे।"

"हम तो रोज राम जी से अढ़ाई हाथ जोड़ के मालिक की राज़ी-खुशी

मागते रहे। एक आदमी के न रहने से कित्ते लोग फालतू हो गए, बेटा।" छत्रो ने गनपत से कहा।

"भाई रहमत, कोठी के भीतर तो सब तरफ जैसे गिद्ध चक्कर काटते फिर रहे हैं।" गनपत ने कहा।

"हा, भाई, कुछ रोज़ यांही पर फड़फड़ाकर नमल्लो से बैठ जाएंगे।" रहमत ने जवाब दिया।

# बेगाने घर में

डॉक्टर साहब एक वकील को लेकर आए थे, मालिक का वसीयत-नामा पढ़वाने। सब नौकरों को भी वहीं मौजूद रहना था। मालिक ने उन्हें भी वसीयत में याद किया था।

अहाते वालों ने सुना, वह रिश्ते में मालिक के भतीजे लगते हैं, जो अब नये मालिक की हैसियत से कोठी में रह जाएंगे। नये मालिक की घरवाली वही थी, जिसने गनपत के मनहूस रोने-धोने का मालिक की मौत से रिश्ता जानना चाहा था।

नये मालिक के चार सपूत थे, जिनमें से दो बड़े वाले गमी में आए

हुए थे। और अपनी मिल्कियत को कई दिनों से ठोकते-बजाते फिर रहे थे।

छोटी कोठी स्कूल के नाम कर दी गई थी। ईसाई मास्टर जोड़े को जीते जी उसमें रहने की इजाज़त थी।

पीछे की छोटी-सी खेती, ज़मीन समेत, बनफुलवा के नाम लिखी निकली। नौकरों की सब कोठरियां दो-दो के हिसाब से उन्हें बख्श दी गई थीं। रहमतुल्ला और जगेसर के नाम दो-दो हज़ार की नकदी थी। गनपत के नाम पांच हज़ार। भला कोई कह सकता था कि मालिक की नज़र कभी भी फकीरा भिश्ती या छन्नो मेहतरानी पर पड़ी होगी? उन दोनों के नाम पांच-पांच सौ की नकदी लिखी थी।

पीली कोठी, सामान समेत, नये मालिक की थी।

"घोड़ी?" जगेसर बेवकूफ़ की तरह बीच ही में बोल पड़ा। उसे उत्तर नहीं मिला।

"सा'ब लैबरेरी?" गनपत से भी न रहा गया।

"लाइब्रेरी की सभी पुस्तकें कचहरी के संग्रहालय में भेज दी जाएंगी।" वकील साहब ने फरमाया।

बीस हज़ार की नकदी अंधे बच्चों के अनाथ-आश्रम के नाम थी।

वसीयत पढ़े जाने के पश्चात् नये मालिक ने उठकर एलान किया कि सभी नौकर-चाकर, अपनी-अपनी पुरानी नौकरियों पर तैनात रह सकते हैं, बशर्ते कि वह तमीज़ से, ढंग से काम करते रहें।

अगले दिन रतनी और चंपा ने कोठी का काम छोड़ दिया। इसपर नई मालकिन ने उन्हें वह खरी-खोटी सुनाई और एहसान-फरामोश से लेकर बेईमान, चोट्टियों तक के खिताब ऐसी बुलंद आवाज़ में बख्शे कि बात मर्दों तक जा पहुंची। नये मालिक ने दम दिया कि जगेसर और बनफुलवा भी बर्खास्त किए जाते हैं।

वनफुलवा अपनी पानी की ट्यूव और कुदाली उठाकर पीछे की खेती की ओर चल दिया, वोला :

"जव वरगद का पेड़ ही धरती निगल गई तव का ताप अऊर का छईया।"

इसपर उससे ट्यूव और कुदाली ज़व्त कर ली गई कि वे चीज़ें उसके वाप की नहीं हैं।

जव तक लाइब्रेरी वनी रही तव तक गनपत भी कोठी के अंदर झाड़न-झटका करता रहा।

रसोई तो नई मालकिन ने संभाल ली थी।

"वड़ी चतुर-सयानी है नई मालकिन, किफ़ायत-वरकत के ओछे से ओछे नुस्खे जानती है।" गनपत ने अहाते वालों से कहा था।

जिस रोज़ लाइब्रेरी टमटम पर लदकर चली गई, उस रोज़ गनपत भी अपनी ज़वानी अर्ज़ी दे आया। जो गालियां अहाते में भी वर्जित थीं, वही पीली कोठी के वड़े हॉल में वैठकर नये मालिक ने गनपत को सुना दीं।

गनपत अहाते में लौटकर अपनी संदूकची-विस्तर ठीक करने लगा। "अव इस वेगाने घर में नहीं रहेंगे। गांव चले जाएंगे हम।"

"अरे गांव में कौन वैठा है? कोठरी तो तुम्हारी अपनी है ही, कहीं और काम पकड़ लो, रह तो जाओ यहीं।" रतनी ने समझाया।

"अरे हम क्या भांड हैं जो जगह-जगह पर गाते-वजाते फिरेंगे?"

"वहां वीमारी-हारी में कौन टोकेगा भला?"

रतनी की पलकें भीग आई थीं, पर गनपत को गांव जाने से वह भी नहीं रोक पाई।

अहाते में फिर वासी सवेरे उगा करते। रेंगती हुई दोपहरें वीततीं।

ठहरी हुई-सी शामें और ऊबी हुई रातें। अहाते वाले मानो अपनी गृहस्थी को लेकर अनाथ हो गए हों।

वनफूलवा अपनी खेती की उपज को बाजार में बेचकर गुजर-बसर करने लगा पर बगीचे की तरफ पलटकर नहीं देखा। कोठी वालों ने कोई नया माली रख लिया था। कभी-कभार वह आकर वनफूलवा के पास अपना रोना रो जाता।

जगेसर और रहमतुल्ला घोड़ी के नेह के मारे नये मालिक से बिधे रह गए।

कोचवान साहब रोज अहाते में बैठकर, उन गली-कूचों का बयान दिया करते जहां नये मालिक लोग अपने टटपूजिया रिश्तेदारों से मिलने जाया करते।

"जाने कहा-कहा, खुदा के पिछवाड़े, काठ-कबाड़ में इनके भाई-बन्द फंसे पड़े हैं। हम तो गए नहीं कभी ऐसी रपटन-भरी गलियों में। और बीबी जान को ताजादम भी नहीं होने देते। अरे भाई, जानदार जिनावर है, कोई कोयला झोंका इंजन थोड़े है, जो भूखे-प्यासे दौड़ाए लिए जा रहे हो।"

जगेसर भी आह भरकर कहता

"हां भाई। घोड़ी तो रोवे है। मैंने तो देखा है, उसकी आंखों में पानी-सा चमकता।"

"याद है जगेसर, उस साल जब घोड़ी यकदम से 'मस्त' हो उठी थी? खूंटा तुड़ाकर कैसी हिनहिनाकर दौड़ पड़ी थी? पहचानी भी नहीं जा रही थी। ना दायें देखे ना बायें, बस दुलत्तियां झाड़ती, भागती जाए। तुम-हम कैसा दौड़े थे उसके पीछे! मालिक चबूतरे पर बैठे थे। अचानक घोड़ी चबूतरे पर दोनों पांव टेककर हिनहिना उठी। मालिक ने कुर्सी पर बैठे-बैठे वहीं से पुचकार दिया। और घोड़ी ने पांव उतार लिए और

वनफुलवा अपनी पानी की ट्यूव और कुदाली उठाकर पीछे की खेती की ओर चल दिया, वोला :

"जव वरगद का पेड़ ही धरती निगल गई तव का ताप अऊर का छईया।"

इसपर उससे ट्यूव और कुदाली ज़ब्त कर ली गई कि वे चीज़ें उसके वाप की नहीं हैं।

जव तक लाइब्रेरी वनी रही तव तक गनपत भी कोठी के अंदर झाड़न-झटका करता रहा।

रसोई तो नई मालकिन ने संभाल ली थी।

"वड़ी चतुर-सयानी है नई मालकिन, किफायत-वरकत के ओछे से ओछे नुस्खे जानती है।" गनपत ने अहाते वालों से कहा था।

जिस रोज़ लाइब्रेरी टमटम पर लदकर चली गई, उस रोज़ गनपत भी अपनी ज़वानी अर्ज़ी दे आया। जो गालियां अहाते में भी वर्जित थीं, वही पीली कोठी के वड़े हॉल में वैठकर नये मालिक ने गनपत को सुना दीं।

गनपत अहाते में लौटकर अपनी संदूकची-विस्तर ठीक करने लगा। "अव इस वेगाने घर में नहीं रहेंगे। गांव चले जाएंगे हम।"

"अरे गांव में कौन वैठा है? कोठरी तो तुम्हारी अपनी है ही, कहीं और काम पकड़ लो, रह तो जाओ यहीं।" रतनी ने समझाया।

"अरे हम क्या भांड हैं जो जगह-जगह पर गाते-वजाते फिरेंगे?"

"वहां वीमारी-हारी में कौन टोकेगा भला?"

रतनी की पलकें भीग आई थीं, पर गनपत को गांव जाने से वह भी नहीं रोक पाई।

अहाते में फिर वासी सवेरे उगा करते। रेंगती हुई दोपहरें वीततीं।

ठहरी हुई-सी शामें और ऊबी हुई रातें। अहाते वाले मानो अपनी गृहस्थी को लेकर अनाथ हो गए हों।

वनफुलवा अपनी खेती की उपज को बाजार में बेचकर गुजर-बसर करने लगा पर बगीचे की तरफ पलटकर नहीं देखा। कोठी वालों ने कोई नया माली रख लिया था। कभी-कभार वह आकर वनफुलवा के पास अपना रोना रो जाता।

जगेसर और रहमतुल्ला घोड़ी के नेह के मारे नये मालिक से बिंधे रह गए।

कोचवान साहब रोज अहाते में बैठकर, उन गली-कूचों का बयान दिया करते जहां नये मालिक लोग अपने टटपूंजिया रिश्तेदारों से मिलने जाया करते।

"जाने कहां-कहां, खुदा के पिछवाड़े, काठ-कबाड़ में इनके भाई-बन्द फंसे पड़े हैं। हम तो गए नहीं कभी ऐसी रपटन-भरी गलियों में। और बीबी जान को ताजादम भी नहीं होने देते। अरे भाई, जानदार जिनावर है, कोई कोयला झोंका इंजन थोड़े है, जो भूखे-प्यासे दौड़ाए लिए जा रहे हो।"

जगेसर भी आह भरकर कहता·

"हां भाई। घोड़ी तो रोवे है। मैंने तो देखा है, उसकी आंखों में पानी-सा चमकता।"

"याद है जगेसर, उस साल जब घोड़ी यकदम से 'मस्त' हो उठी थी? खूंटा तुड़ाकर कैसी हिनहिनाकर दौड़ पड़ी थी? पहचानी भी नहीं जा रही थी। ना दायें देखे ना बायें, बस दुलत्तियां झाड़ती, भागती जाए। तुम-हम कैसा दौड़े थे उसके पीछे! मालिक चबूतरे पर बैठे थे। अचानक घोड़ी चबूतरे पर दोनों पांव टेककर हिनहिना उठी। मालिक ने कुर्सी पर बैठे-बैठे वहीं से पुचकार दिया। और घोड़ी ने पांव उतार लिए और

दूसरा रुख कर लिया। जिनावर भी मालिक को जाने है, जगेसर।"

"हां भाई, नहीं तो उस मौके पर तो घोड़ी तुम्हें-हमें भी झाड़े दे रही थी। औरतों ने तो बच्चे घरों में लुको लिए थे। कोई घण्टा-भर तो दौड़ा लिया होगा घोड़ी ने?"

"हां, मालिक ने तो फौरन उसे फौज के लपटन सा' व के आला नस्ल के घोड़े के पास भिजवा दिया था। हम-तुम ही तो ले गए थे थाम के?" रहमतुल्ला ने याद करते हुए कहा।

"अब इन नये मालिकों को समझा तो लो ये बातें। इन्हें तो घोड़ों और गधों में भी फरक नज़र ना आने का।" जगेसर बोला।

"और बनकर बैठ गए हैं पीली कोठी के मालिक। खुदा अपने गधों को हलवा खिलाए तो कोई क्या करे।" रहमतुल्ला ने जोड़ा।

गनपत का पता दिया खत आया था गांव से।

रहमतुल्ला कभी-कभी गनपत को खत लिख दिया करता था। उसका जवाब आने पर अहाते में ज़ोर से पढ़कर सुना दिया करता था।

रतनी ने मालिक के दिए रुपयों में से जब बड़की का ब्याह किया, तब बहुत-बहुत लिखवाया गनपत को, कि वह ज़रूर आ जाए। पर गनपत नहीं आया।

मालिक को साल गुज़रते न गुज़रते बड़ी बी का इंतकाल हो गया। रहमतुल्ला ने गनपत को लिख दिया था कि मरने से पहले वाले दिनों में बड़ी बी उसे बेहद याद किया करती थीं। कहतीं, "मुश्टंडा, निगोड़ा जाने कहां-कहां की खाक फांक रहा होगा।"

दो बरस बाद, अचानक शाम को डॉक्टर साहब को पीली कोठी के भीतर जाते देख अहाते वाले हैरान रह गए। ड्राइवर से पता चला कि नये

मालिक का छोटा लड़का बीमार हो गया था। जब केस बिगड़ गया तो वे लोग डॉक्टर साहब को हाथ-पाँव जोड़कर ले आए हैं।

डॉक्टर साहब बाहर आए तो अहाते के नौकरों ने घेर लिया।

उन्हें लगा मानो अपने मालिक का ही एक अंग उनके समीप आ गया हो।

डॉक्टर साहब सोच रहे थे कि कोई भी कोठी दो ही बरस में अपनी पहचान के निशान इस तरह खो दे सकती है, यह नामुमकिन ही था, पर, फिर भी हुआ ऐसा ही था। फूलों की लंबी कतारवाली सड़क पर अब फकत लाल बजरी बिछी थी। नागचंपा का बस ठूंठ-भर बाकी बचा था। बनफुलवा ने बतलाया कि नया माली कहता था कि उनकी लकड़ी दूसरे बेकार पेड़ों के साथ-साथ टालवाले को बेच दी गई थी। बेकार पेड़ों में नीम भी था।

लाइब्रेरी को स्टोर बना डालना भी इन्हीं नये लोगों के बस की बात थी। ऐन कोठी के सामने ही तो पड़ती थी। बनफुलवा लगातार बोले चला जा रहा था :

" सा'ब, नया माली तो रोवे है। बोलत रहा कि नये मालिक कहत हुई कि बगीचा खातिर पौध अऊर बीज मुफत लाओ, दूसरी कोठी ते। इसीसे तो उसे दूसरी कोठिन मा काम करन देत हुई। कहत हुई, खाद-खातिर रुपया ना मिलो। घोड़ी का लीद से बनाय लेव। कहत हुई, कुदाली-फावड़ा टूटे-फूटे पर अपन पईसा से मोल करो। कहत हुई, ऐन खाने का टैम मति आन धमको। अपन रोटी साथे बाँध के लाओ।

" सा'ब, अस बनिया-बक्काल मालिक ते हमरी खाल बच गई। भला हुई गवा जो हम वो आफत में ना परे। देखो तो, सगरा बगीचा तूखा पड़ा हुई।"

डॉक्टर साहब ने उसे चुप करने को कह दिया :

"चलो वनफूल, तुम्हारी खेती देख आएं।"

वनफुलवा जी उठा।

खेती की तरफ जाते हुए देखा, किशोरचन्द्र की घोड़ी-गाड़ी की अब भी वही शान वनी है। दोनों चकमक चमक रही हैं। वनफुलवा की छोटी-सी खेती में, जो अब उसके जीवन-निर्वाह का एकमात्र साधन थी, साग-सब्ज़ी की क्यारियों से हटकर, एक ओर थोड़ी-सी ज़मीन वचाकर पीले गुलाब की लतर उगाई गई थी—मेहराबदार लतर। कुछ और भी मालिक के मन-पसंद फूल उगाए गए थे। वनफुलवा ने वतलाया, इन फूलों को न तोड़ने की सख्त हिदायत दे रखी थी उसने। ये फूल कमाऊ-बिकाऊ नहीं थे। वस, किसीकी यादगार थे, जो एक गरीव अपनी कारीगरी से महकाए हुए था।

डॉक्टर मनोहरसिंह को लगा कि पीली कोठी में अगर किशोरचन्द्र कहीं भी जी रहे हैं तो इस माली के वगीचे में या फिर अहाते या अस्तवल में।

उन्हें लगा कि यही हैं किशोरचन्द्र के असली वारिस, ये रहमतुल्ला कोचवान, जगेसर घसियारा, वनफुलवा माली और वह······ वह जो जाने कहां भटक रहा होगा······गनपत वावर्ची।

"चलो वनफूल, तुम्हारी खेती देख आएं।"

वनफुलवा जी उठा।

खेती की तरफ जाते हुए देखा, किशोरचन्द्र की घोड़ी-गाड़ी की अब भी वही शान बनी है। दोनों चकमक चमक रही हैं। वनफुलवा की छोटी-सी खेती में, जो अब उसके जीवन-निर्वाह का एकमात्र साधन थी, साग-सब्ज़ी की क्यारियों से हटकर, एक ओर थोड़ी-सी ज़मीन बचाकर पीले गुलाब की लतर उगाई गई थी—मेहराबदार लतर। कुछ और भी मालिक के मन-पसंद फूल उगाए गए थे। वनफुलवा ने बतलाया, इन फूलों को न तोड़ने की सख्त हिदायत दे रखी थी उसने। ये फूल कमाऊ-बिकाऊ नहीं थे। बस, किसीकी यादगार थे, जो एक गरीब अपनी कारीगरी से महकाए हुए था।

डॉक्टर मनोहरसिंह को लगा कि पीली कोठी में अगर किशोरचन्द्र कहीं भी जी रहे हैं तो इस माली के बगीचे में या फिर अहाते या अस्तबल में।

उन्हें लगा कि यही हैं किशोरचन्द्र के असली वारिस, ये रहमतुल्ला कोचवान, जगेसर घसियारा, वनफुलवा माली और वह······ वह जो जाने कहां भटक रहा होगा······गनपत बावर्ची।